

भूमिका

**एसो पंचणमोयारो सब्बपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सब्बेसिं पढमं होइ मंगलं ॥**

नाना रूप धरे यह जीवन

जीवन समूचे ब्रह्माण्ड में सबसे बड़ी सम्पदा है। ब्रह्माण्ड में तारे हैं, सूरज है, चाँद है, ग्रह-नक्षत्र है, पहाड़ हैं, घाटियाँ हैं, नदी हैं, नाले हैं, झरने हैं, पेड़-पौधे हैं, जंगल हैं, पशु हैं, पक्षी हैं। सम्पूर्ण तत्त्व इस ब्रह्माण्ड में हैं पर सारे संसार की जो सुन्दरता है वह जीवन के सुरक्षित रहने पर ही है। जब तक हमारा जीवन है, तभी तक संसार का कोई अर्थ है। जीवन के अभाव में संसार की ये रंगीनियाँ हमारे लिये अर्थहीन हैं। जब जीवन ही नहीं तो शेष चीजें किस अर्थ की? जब कभी भी हम अपने जीवन के सन्दर्भ में विचार करते हैं तो हमारा जीवन कई रूपों में दिखाई पड़ता है। कभी हमारा जीवन देव रूप होता है तो कभी दानव रूप। कभी हम पशु हो जाते हैं तो कभी परमेश्वर। देव भी जीवन का एक रूप है, दानव भी जीवन का एक रूप है, पशु भी जीवन का एक रूप है और परमेश्वर भी जीवन का एक रूप है। ये दोनों हमारे ही रूप हैं। हम इंसान भी हो जाते हैं तो शैतान भी हो जाते हैं।

एक बड़ी विचित्रता है, जो कभी देव है वह देव ही रहता है, कभी दानव नहीं होता। जो दानव है वह दानव ही रहता है कभी देव नहीं बनता। जो पशु है वह पशु ही रहता है कभी परमेश्वर नहीं बनता। शैतान शैतान रहता है कभी भगवान् नहीं बनता। लेकिन जब हम अपने जीवन के अन्तस् में झाँककर देखते हैं तो हमें लगता है कि हम कई-कई बार खुद ही देव हो जाते हैं और कभी दानव भी। यह हमारे जीवन की स्थिति है। यह परिवर्तन हमारे अन्दर निरन्तर चलता रहता है।

वस्तुतः, हमारे जीवन के ये दो रूप हैं। अन्दर की सात्त्विकता हमारे देव रूप की अभिव्यक्ति है और हमारे मन की कलुषता दानव स्वरूप की अभिव्यक्ति।

2 सुखी जीवन की राह

दोनों रूप हमारे अपने हैं, चाहे राम कहें या रावण, देव कहें या दानव। वस्तुतः इन्हें एक प्रतीक के रूप में समझना चाहिए। हमारे अन्दर की सज्जनता, धार्मिकता, हमारे स्वयं के प्रति जागरूकता ही भीतर में देवत्व की प्रतिष्ठा है। इसके विपरीत हमारे अन्दर की कलुषता हमारे दानवीय रूप की अभिव्यक्ति है।

दो शब्द हैं। यदि मैं आपसे पूछू कि अंग्रेजी में गॉड किसको कहते हैं? गॉड की स्पेलिंग है - जी ओ डी। यदि इसको उलट दें तो क्या होगा? डी ओ जी। गॉड का मतलब होता है भगवान् और डॉग का मतलब है कुत्ता।

सही नजरिया जीवन का

इसमें जीवन का बहुत बड़ा संदेश है - सीधी जिंदगी का नाम गॉड है और उल्टी जिंदगी का नाम डॉग है। हम सीधी जिंदगी जियें। जीवन के प्रति सही नजरिया अपनायें। साफ दृष्टिकोण हो तो हम अपने देवत्व की अभिव्यक्ति में समर्थ होंगे। और यदि हमारा नजरिया उल्टा होगा तो हम अपने अन्दर देवत्व की प्रतिष्ठा करने में कभी भी सक्षम नहीं हो सकेंगे। यह तभी संभव है, जब दुनिया की और सारी चीजों से जीवन को महत्व दें। हमारे साथ एक बहुत बड़ी विसंगति है, हम हर चीज की कीमत आँकते हैं लेकिन जीवन की कीमत नहीं आँकते। तुम्हारे गले में जो हार है उसका तो मूल्यांकन कर रखा है। तुम्हारे हाथों में जो चूड़ियाँ हैं उसकी भी कीमत तुम्हें पता है। लेकिन तुम्हें अपनी जिंदगी की कीमत का पता नहीं है। घर में नल फालतू बहता है तो हम कहते हैं कि पानी फालतू मत बहाओ, व्यर्थ में पानी मत बहाओ। बिजली व्यर्थ जलती है तो हमें खटकता है, लेकिन सारी जिंदगी बेकार हो जाती है तो हमें कुछ नहीं खटकता। इसका मतलब यह कि जीवन के प्रति जैसा जागरूक हमें होना चाहिए, वैसा हम नहीं हो पा रहे हैं। अपने जीवन के प्रति जागरूक होइये। जीवन मूल्यवान् है। दुनिया की चीजें कीमती हो सकती हैं, पर वे जीवन से ज्यादा कीमती नहीं हैं।

यदि हमारे एक हाथ में जीवन और दूसरे हाथ में दुनिया की चीजें हों तो जीवन ही मूल्यवान् होगा, दुनिया की चीजें नहीं। क्योंकि जब तक मूल्यांकन करने वाला है, तब तक ही मूल्य है। जब मूल्यांकन करने वाला नहीं तो संसार की जितनी भी वस्तुएँ हैं वे स्वयं अपना मूल्य नहीं बताती। उनका यदि कोई मूल्यांकन करने

वाला है तो वह है मनुष्य। हमने मूल्य आँका। हीरा ने कभी नहीं कहा कि हमारा लाख रुपये मूल्य है। जितने जवाहरात है, वे यह नहीं कहते कि उनका अमुक मूल्य है। लेकिन मूल्य किया है हमने इन चीजों का।

जीवन के रहते ही जीवन की चीजों का मूल्य है, जीवन के अभाव में वे सभी चीजें मूल्यहीन हैं। एक बात ध्यान रखना, संसार की सारी चीजें हम सामने रख लें लेकिन अपनी जिंदगी को एक मिनिट भी आगे नहीं बढ़ा सकते। हम समझें, हमारा जीवन क्या है? जीवन का ध्येय क्या है? हमारा लक्ष्य क्या होना चाहिए? हमारा उद्देश्य क्या होना चाहिए?

सम्राट् सिकंदर विश्वविजय के अभियान में बढ़ा जा रहा था। रास्ते में उसकी किसी संत से मुलाकात हो गयी। संत ने पूछा - तुम कहाँ जा रहे हो? वह बोला - मैं हिन्दुस्तान को जीतने जा रहा हूँ। हिन्दुस्तान को जीत कर क्या करोगे? पड़ोसी देशों को जीतूँगा। पड़ोसी देशों को जीतकर क्या करोगे? सुख की रोटी खाऊँगा। संत जोर से हँस दिये और कहा - सिकंदर तुम्हें सुख की रोटी ही खानी है तो क्या अभी रोटियों की कमी है? जो दूसरों की रोटियाँ छीनने के लिये निकल पड़े हो!

सुविधा नहीं सुख तलाशें

तुम कितना भी क्यों न जोड़ लो, बाहर की सम्पत्ति में सुख का निवास नहीं है। सुख का निवास हमारे अन्तस् की संवेदना पर होता है। बाहर से जो कुछ भी जोड़ा जाता है, वह सुविधा हो सकती है, सुख नहीं। सुविधायें जुड़ायी जा सकती हैं, पर सुख तो भीतर से अर्जित किया जाता है। भीतर से अभिव्यक्त किया जाता है। क्योंकि सुख आन्तरिक संवेदना की अभिव्यक्ति है। और जो बाहर से जोड़ा जाता है, वह महज एक संयोग है। जो जोड़ा जाता है वह बिछुड़ता भी है। जो अन्दर से उत्पन्न होता है वह शाश्वत होता है।

जब हमारा दृष्टिकोण स्वयं पर केन्द्रित होता है, जब हम अपने जीवन के प्रति जागरूक होते हैं तो वहीं से सुख की उत्पत्ति प्रारम्भ हो जाती है। और जब तक हमारी दृष्टि वस्तुन्मुखी होती है हम वस्तुओं से प्रभावित होते रहते हैं। तब तमाम सुविधाओं के मध्य भी हमारे अन्तरंग में आकुलता उत्पन्न होती रहती है। वह हमारे जीवन के सुख का आधार नहीं बन पाती।

संत कहते हैं - जीवन को समझो, सुविधाएँ हमारे जीवन का साध्य नहीं हैं। सुख हमारे जीवन का साध्य है। वह सुख हम तभी प्राप्त कर सकेंगे, जब हम अपने जीवन को ठीक ढंग से समझेंगे। धर्म हमें उसी सुखपूर्ण जीवन जीने की कला सिखाता है। धर्म के विषय में हमने बहुत-बहुत बातें सुनी और समझी हैं। हमें स्वर्ग और नरक की कहानी भी धर्म के माध्यम से जानने को मिली। पर बन्धुओ, मैं आपसे स्वर्ग और नरक की बातें करना नहीं चाहता। मेरे मत के अनुसार आज स्वर्ग और नरक के नक्शे बनाने की जरूरत नहीं है। आज जरूरत है जीवन के नक्शे के निर्माण की। मैं आपसे स्वर्ग की बात नहीं कहूँगा, मैं आपसे मोक्ष की बात नहीं कहूँगा, मैं यह भी नहीं कहना चाहता कि स्वर्ग कैसे जाया जाता है। मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि जीवन को स्वर्ग कैसे बनाया जाता है।

रैंगी-पुती जीवन की लाठी

मरने के बाद तो सभी एक बार स्वर्गीय होते हैं। संत कहते हैं कि महत्त्वपूर्ण यह है कि हम जीते जी अपने जीवन को स्वर्ग बना लें। यह तभी संभव है, जब हम दिव्य आचरण करें। स्वर्ग और नरक की बात अलग-अलग है, वे होंगे। उनका अपना अस्तित्व है। पर संत कहते हैं कि जब तुम स्वर्ग जाओगे, तब जाओगे। कम-से-कम अपने जीवन को नरक बनने से तो बचा लो।

हमारे अन्दर की दुर्वृत्तियों का विस्तार ही नरक है। हमारे भीतर की सद्वृत्तियों का जागरण ही स्वर्ग का अवतरण है। स्वर्ग हमसे बाहर नहीं। हम अपने जीवन में सात्त्विकता की अभिव्यक्ति करें, जिसके बल पर हमारा कल्याण हो सके। हमारी कोशिश होनी चाहिए, अपने जीवन को सम्हालने की।

हमारा जीवन किन-किन कारणों से विकृत होता है? किन-किन स्थितियों में हमारे जीवन में बिगाड़ आता है? इन्हें समझने की हमें जरूरत है। हम तमाम बातों को ध्यान देते हैं। अपने जीवन के बाहिरी रूप को भी सम्हालने की कोशिश करते हैं; लेकिन यह विडम्बना है कि अपने जीवन के स्वरूप की ओर ध्यान नहीं देते। आज हर व्यक्ति के साथ एक बहुत बड़ी विसंगति जुड़ी हुई है। हम बाहर से तो बहुत टिपटाप दिखते हैं, लेकिन हम अपने अन्तःकरण का विश्लेषण करके

देखें, अन्तःपरीक्षण करके देखें कि हम कैसे हैं? मेरे ख्याल में आज हर इंसान की हालात ऐसी लाठी की तरह है जो ऊपर से बहुत रंगी-पुती है, बहुत सुन्दर-सी दिख रही है पर भीतर से खोखली है। खोखली लाठी देखने में सुन्दर जरूर बन सकती है, लेकिन मुसीबत पड़ने पर सहारा नहीं बन सकती। वह केवल देखने में ही सुन्दर है, उसका ऊपरी रूप ही सुन्दर है, वह जरूरत पड़ने पर काम नहीं आ सकती। वह कभी सहारा नहीं बन सकती, उसमें कभी सुरक्षा नहीं मिल सकती।

बाहर से हम चाहे कितने ही टिपटाप क्यों न हो, जब तक हम अपने अन्तःकरण से जीवन को शुद्धि करने का प्रयत्न और पुरुषार्थ नहीं करते, तब तक हमारे जीवन की सुरक्षा नहीं है।

घुन लगा जीवन

लाठी में जब घुन लगता है तो लाठी खोखली हो जाती है। हमारे अन्तरंग में भी विकारों के घुन लगे हैं, जिनके कारण हमारा सारा जीवन अन्दर से खोखला हो गया है, उनको दूर करने का प्रयत्न हमारा होना चाहिए। हमारे अन्दर अनेक विकार हैं। जिनमें से कुछ विकारों के माध्यम से आज की बात शुरू करने जा रहा हूँ। वह विकार है क्रोध का, वह विकार है चिन्ता का, वह विकार है ईर्ष्या का, वह विकार है अभिमान का। ये चार हमारी आत्मा के प्रबल शत्रु हैं। जिनके कारण हमारा जीवन भीतर से खोखला होता जा रहा है। क्रोध हमारे दिमाग को कमजोर करता है, चिन्ता हमारे स्वास्थ्य को खा जाती है और ईर्ष्या हमारे सम्बन्धों को बिगाड़ती है। अभिमान हमारे विकास में अवरोधक बन जाता है। ये हमारे चित्त की बहुत बड़ी दुर्बलतायें हैं। इन पर नियन्त्रण लाने का प्रयत्न होना चाहिए। हम सब कुछ तो कर लेते हैं, पर अपने विकारों के विजय का अभियान जो हमें प्रारम्भ करना चाहिए वह नहीं करते।

संत कहते हैं - जो हम बाहर धर्म करते हैं वह सामुदायिक धर्म हैं। वह दूसरों को देखने में आता है। हम मन्दिर में भगवान् की पूजा करते हैं, अभिषेक करते हैं, शास्त्र का स्वाध्याय करते हैं, सत्संग करते हैं, साधुओं की सेवा करते हैं, दान-पुण्य करते हैं, यह वह धर्म है जो दूसरों को देखने में आता है। यह सामुदायिक धर्म है। ऐसा करते-करते हम धर्म की प्रतिमूर्ति भी समझे जाने लगते हैं। लेकिन

बन्धुओ, यह धर्म का केवल बाहिरी रूप है। धर्म का वास्तविक स्वरूप वह है जो हमारा आन्तरिक है। अपने विकारों के शोधन का नाम ही धर्म का आन्तरिक और वास्तविक रूप है। हम यह देखें कि इन सबको करने के साथ-साथ भीतर की कितनी शुद्धि कर रहे हैं। यदि अन्तरंग में शुद्धीकरण है तो बाहर का यह धर्माचरण सार्थक है। अन्तरंग की शुद्धि के अभाव में यह धर्म हमें वांछित फल नहीं दे सकता। हाँ, यह जरूर हो सकता है कि बाहर की यह धर्म की क्रिया दुनियाँ में हमें एक धार्मिक होने का प्रमाण-पत्र दिला दे। लेकिन बन्धुओ, यह कोई जरूरी नहीं कि इसके बाद भी हम धर्मात्मा हों। हम धर्मात्मा तब होंगे, जब हमारे अन्तरंग में धर्म प्रकट होगा। और जैसे ही धर्म प्रकट होगा हमारे विकारों की शुद्धि स्वतः प्रारम्भ हो जायेगी। विकारों के शुद्धीकरण की उस प्रक्रिया को अपनाना है। उसका क्या मार्ग है, इसको समझने की कोशिश करना है।

क्रोध हमारे जीवन की एक बहुत बड़ी दुर्बलता है। मनुष्य जब कोपाविष्ट होता है तो अपना आपा खो बैठता है। कहते हैं क्रोध की शुरूआत अविवेक से होती है और अन्त पश्चात्ताप से। जब व्यक्ति क्रोध के आवेश में आता है तब उसे अपनी सुध-बुध नहीं रहती। जब तक वह कुछ सोचने-समझने की स्थिति में आ पाता है, तब तक उसकी गेंद अपने हाथ से छूट चुकी होती है। उसके पास कुछ नहीं रहता केवल पश्चात्ताप के। इस विकार को जीतने का अभ्यास हमें करना है। आने वाले दिनों में इसकी चर्चा की जायेगी।

चिन्ता भी हमारे मन में बहुत बड़ी बीमारी के रूप में हावी है। बन्धुओ, चाहे क्रोध हो या चिन्ता, चाहे ईर्ष्या हो या अभिमान, विकार उनके ही ऊपर हावी होते हैं, जिन्होंने धर्म को ठीक ढंग से आत्मसात् नहीं किया। जिसने ठीक ढंग से धर्म को आत्मसात् किया है, वह कभी विकारों से प्रभावित नहीं होता।

विकारों का परिहार

संत कहते हैं - विकारों को जीतो। बड़ी-बड़ी बातें तो बहुत करते हैं, लेकिन विकारों को जीतने में बहुत पीछे हैं। वैदिक परम्परा का एक पौराणिक आख्यान है, जो आज के सन्दर्भ में बड़ा प्रेरक है।

एक ऋषि हुए हैं पाराशर। बहुत माने हुए ऋषि थे। वे नदी के तट पर पहुँचे

तो देखा कि एक सुन्दरी युवती नौका लिये बैठी है। वह सुन्दरी अनिन्द्य सुन्दरी थी, अद्भुत रूप था। पाराशर उसके रूप से आकर्षित हुए और उससे उसका नाम पूछा। उसने कहा - मेरा नाम मत्स्यगंधा है। पाराशर ने कहा - मुझे उस पार जाना है, क्या तुम उस पार लगा दोगी? मत्स्यगंधा ने कहा - यह तो मेरा काम ही है। मैं जरूर पार लगा दूंगी। पाराशर नाव में सवार हो गये। मत्स्यगंधा नाव को खेती-खेती बीच नदी में पहुँची। तब तक मत्स्यगंधा के रूप को देखकर पाराशर का मन डोल गया। पाराशर ने युवती से कहा - तुम मेरे पास आओ, मैं तुम्हारा सामीप्य चाहता हूँ। पाराशर के ये वचन सुन वह एकदम से सकपका गयी। उसने कहा - यह क्या कहते हो? यह काम एकदम अनुचित है। कोई देख लेगा तो? पाराशर ने कहा - इस बीच नदी में कौन देखेगा, आओ, तुम मेरे पास आओ। और वह एकदम आपा खो बैठे। वह उठकर मत्स्यगंधा के नजदीक जाने लगे। मत्स्यगंधा ने अपने आपको सम्हाला और कहा - आप कहते हैं कि कोई नहीं देखेगा, पर कोई देखे या न देखे यह सूरज तो देख ही रहा है। दुनिया क्या कहेगी। पाराशर ने कहा - तुमने अभी पहचाना नहीं, तुम्हारी नाव में कौन बैठा है? उसकी ताकत और तपस्या से तुम अनभिज्ञ हो। तुमने उसकी शक्ति को नहीं पहचाना। ठहरो, मैं इस सूरज को सामने से दूर कर देता हूँ। और पाराशर ने मन्त्र फूँका तो तुरन्त ही बादल छा गये और सूरज बादलों की ओट में आ गया। अब अभिमान से भर कर पाराशर ने कहा - देख ली ना तुमने मेरी शक्ति। मैं सूरज को भी प्रतिहत कर सकता हूँ। सूरज को भी ढाँकने की क्षमता मुझमें है। अब की बार मत्स्यगंधा की बारी थी, उसने पाराशर के मन को झकझोरते हुए कहा - पाराशर, आपमें इतनी अधिक शक्ति है कि सूर्य के प्रभाव को भी प्रतिहत करने की क्षमता आ गयी, पर आप अपने विकारों को नहीं जीत सकें, धिक्कार है तुम्हें।

सूरज को ढाँक लेना फिर भी सरल है, पर विकारों को ढाँकना बहुत कठिन है। हमारी पहल भीतर की शुद्धीकरण की ओर होनी चाहिए। जब तक हम भीतर से नहीं सँवरते, तब तक हमारा जीवन सुखी नहीं बन सकता। यह कोशिश हमारी होनी चाहिए, हम निरन्तर इस क्षेत्र में आगे बढ़ें और अपने जीवन के निर्मलीकरण का प्रयत्न करें। यही हमारी सर्वोच्च उपलब्धि है।

आध्यात्मिक सोच बनायें

अहिंसा परमो धर्म की जय

एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ॥

सारा खेल नजरिये का

एक संत किसी रास्ते से गुजर रहे थे। सड़क के किनारे मन्दिर निर्माण का कार्य चल रहा था। सैकड़ों मजदूर कार्य में लगे हुए थे। पता नहीं संत के मन में क्या भावना जगी कि रास्ते से एक ओर होकर पत्थर तोड़ते हुए मजदूर से पूछा - भाई! क्या कर रहे हो? कड़वी निगाहों से घूरते हुए मजदूर ने कहा - दिखता नहीं, पत्थर तोड़ रहा हूँ। कुछ आगे बढ़कर संत ने पुनः एक अन्य मजदूर से पूछा - भाई! क्या कर रहे हो? मजदूर ने कहा - पेट पाल रहा हूँ। संत थोड़ा और आगे बढ़े और तीसरे मजदूर से पूछते हैं - भाई, क्या कर रहे हो? उसने प्रसन्नता से भरकर कहा - मन्दिर बना रहा हूँ।

क्रिया एक है, पर तीनों का दृष्टिकोण अलग-अलग है। एक पत्थर तोड़ रहा है, दूसरा पेट पाल रहा है और तीसरा मन्दिर बना रहा है। बन्धुओ, संसार में सब जीते हैं, जीने का तरीका और क्रिया ऊपरी तौर पर एक दिखाई देती है, पर हर व्यक्ति का दृष्टिकोण अलग-अलग होता है, सबका नजरिया अलग-अलग होता है।

संत कहते हैं हमारा सारा जीवन हमारे नजरिये पर निर्भर करता है। मनुष्य का जैसा नजरिया होता है, जैसा दृष्टिकोण होता है, उसका सारा जीवन वैसा बन जाता है। नजरिया बेहतर होता है तो हमारा जीवन बेहतर बनता है और यदि नजरिया खराब है तो हमारा जीवन भी खराब बनता है। सच्चे अर्थों में हमारा नजरिया ही जीवन को निर्मल बनाता है या बिगाड़ देता है। यदि हमारा व्यवहार बेहतर बना है तो नजरिये के कारण। यदि हमारी आदतें अच्छी बनी है तो नजरिये

के कारण। यदि हमारा जीवन अच्छा बनता है तो भी नजरिये के कारण। सब कुछ नजरिये पर निर्भर है। नजरिया ही व्यक्ति को सुखी बनाता है और नजरिया ही व्यक्ति को दुःखी बनाता है। हम यदि किसी की प्रशंसा करते हैं तो भी नजरिये के कारण। और यदि किसी की निन्दा करते हैं तो वह भी नजरिये के कारण। हम अच्छा करते हैं, वह भी नजरिये का परिणाम है। हम बुरा करते हैं वह भी नजरिये का परिणाम है। वस्तुतः हमारा सारा जीवन हमारी सोच पर, हमारे चिन्तन पर, हमारे नजरिये और हमारे एटीट्यूट पर निर्भर करता है।

हम कैसे सोचते हैं? हमारा व्यवहार हमारी सोच पर निर्भर है। जो कुछ भी हम बोलते हैं, क्रिया करते हैं, वह सब कुछ हमारी सोच से प्रेरित होता है। हमारी सोच हमारी वाणी में आती है और हमारी वाणी हमारे व्यवहार में उतरती है। सोच से ही वाणी और सोच से ही व्यवहार बनता है। हम अपने व्यवहार को बदलने का यत्किंचित् प्रयत्न तो जब चाहे कर लेते हैं, पर अपनी सोच को परिवर्तित करने का प्रयास बहुत कम ही कर पाते हैं।

जैनदर्शन धर्म की शुरुआत सम्यग्दर्शन से मानता है। सम्यग्दर्शन और कुछ नहीं है, निर्मल सोच की अभिव्यक्ति का नाम ही सम्यग्दर्शन है। साधारण बोलचाल की भाषा में हम सम्यग्दर्शन की बात करें तो सम्यग्दर्शन का मतलब है निर्मलदृष्टि। निर्मलदृष्टि का मतलब है बेहतर नजरिया, सही सोच। पर क्या कहें? अपने सोच को निर्मल बनाने का जैसा प्रयास और प्रयत्न अपेक्षित है, वैसा हम नहीं कर पाते।

संत कहते हैं - बाहर की शुद्धि बहुत सरल है, अन्तःकरण की पवित्रता बहुत कठिन है। हम यह देखें, कि हम यदि धर्माचरण कर रहे हैं तो किस स्तर पर कर रहे हैं? केवल ऊपरी स्तर से कर रहे हैं या भीतरी स्तर से। संत कहते हैं - जब तक कोई भी क्रिया आत्मस्पर्शी नहीं बनती, कल्याणकारी नहीं हो सकती। आत्मस्पर्शी क्रिया ही कल्याणकारिणी बनती है। बाहर की क्रिया तो हम बहुत सहजता से कर लेते हैं। लेकिन भीतर की शुद्धिकरण का जैसा प्रयत्न और पुरुषार्थ अपेक्षित होता है वैसा हम नहीं कर पाते।

बन्धुओ, भीतर की शुद्धि किसी की प्रेरणा और प्रोत्साहन से नहीं होगी। वह हमारी चेतना के जागरण से होती है। हमारी चेतना जब जागृत होती है, तो वह हमारे

सोच को प्रभावित करती है। जैसे ही मनुष्य की सोच बदलती है, उसका जीवन बदल जाता है।

क्या कहता है मन का विज्ञान ?

मनोविज्ञान में तीन शब्दों पर बहुत ज्यादा ध्यान दिया जाता है - वृत्ति, प्रवृत्ति और परिणाम। वृत्ति अर्थात् हमारे मन में उठने वाले शुभाशुभ संकल्प और विकल्प। प्रवृत्ति अर्थात् हमारी क्रिया में उतरने वाली बातें और परिणाम अर्थात् इन सबका नतीजा या निचोड़। हम जो अच्छा-बुरा परिणाम देखते हैं, उससे हम यह मानते हैं कि ये परिणाम हमारी अच्छी या बुरी प्रवृत्ति के कारण हैं। तय है प्रवृत्तियाँ परिणाम देती हैं। परिणामों को देखकर हम प्रवृत्तियों को बदल देने का प्रयास भी करते हैं। लेकिन यह भूल जाते हैं कि प्रवृत्तियों की जननी तो वृत्तियाँ हैं। जब तक जड़ रहेगी, हम पेड़ की शाखा-प्रशाखाओं को कितना ही काट दें, वे फिर बढ़ जायेंगे। वृत्तियों के बिना जो प्रवृत्ति बदलती है उसमें स्थायीपना नहीं होता। वह तात्कालिक रूप से दिखाई देती है। उसका प्रभाव भी थोड़े देर के लिये ही होता है। उसका स्थायी लाभ नहीं ले सकते। संत कहते हैं प्रवृत्ति में नहीं वृत्ति में परिवर्तन करने की कोशिश करो। वृत्ति के परिवर्तन से प्रवृत्ति में परिवर्तन आता है और प्रवृत्ति के परिवर्तन से परिणाम भी परिवर्तित होते हैं। यह एक मार्ग है।

संत कहते हैं कि बाहर के परिवर्तन से भीतर का परिवर्तन, परिवर्तन का असम्यक् तरीका है। तथा भीतर के जागरण से बाहर का जागरण परिवर्तन का सम्यक् उपाय है, मार्ग है। हम भीतर से बाहर आने की कोशिश करते हैं और संत बाहर से भीतर की ओर आने की बात करते हैं। भीतर की शुद्धि पर हमारा सर्वाधिक ध्यान जाना चाहिए। आज हम यह देखते हैं कि आज के युग में जहाँ भौतिकता का बोलबाला है, वहीं लोगों का आध्यात्मिक रुझान भी बढ़ा है। धार्मिक कार्यक्रमों और आयोजनों में लोगों की सहभागिता बढ़ी है। पूजा-पाठ और धार्मिक क्रियाओं का निरन्तर प्रचार बढ़ रहा है। लोगों की प्रवृत्तियाँ भी बढ़ रही हैं। लेकिन उस तुलना में जब हम मनुष्य के आचरण पर ध्यान देते हैं, उसके व्यवहार पर ध्यान देते हैं, उसकी सोच पर जब अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं तो हमें लगता है कि आज का आदमी बहुत पीछे है।

आज से पचास वर्ष पहले प्रवचनों के इतने आयोजन नहीं हुआ करते थे। इतने बड़े-बड़े धार्मिक समारोह और समागम भी नहीं हुआ करते थे। पचास साल पहले लोगों के व्यवहार में इतनी विकृति नहीं थी। लोग सरल हुआ करते थे। इतनी ज्यादा लूट-खसोट नहीं हुआ करती थी। उस समय मनुष्य के मन में इतनी हताशा और दुराशा की भावना नहीं हुआ करती थीं। उस समय का मनुष्य इतना अधिक चिन्ताग्रस्त और कुण्ठाग्रस्त भी नहीं दिखाई पड़ता था।

दूसरी तरफ, जब हम देखते हैं कि इन सब बातों में बढ़ोत्तरी हुई है, वहीं मनुष्य के मन में अनेक बीमारियाँ हावी होती जा रही हैं। आखिर ऐसा क्यों हुआ? लोग कहते हैं जमाना बदल गया।

एक बार एक व्यक्ति ने मुझसे प्रश्न किया - महाराज, सूरज पहले भी पूर्व से उगता था आज भी वहीं से उगता है। चाँद तारे पहले भी रात में दिखते थे आज भी रात में ही दिखते हैं। पहले आदमी मुँह से ही खाया करता था आज भी मुँह से ही खाता है। पहले भी आदमी आँख से देखता था आज भी आदमी आँख से देखता है। सब कुछ ज्यों का त्यों है, फिर भी लोग कहते हैं कि जमाना बदल गया! आखिर बदला क्या है? यह एक बड़ा अहं प्रश्न है।

मैंने उन्हें उत्तर में एक कहानी सुनायी। एक राजा ने यही प्रश्न किया कि लोग कहते हैं कि जमाना बदल गया जमाना बदल गया लेकिन यथार्थ में बदला क्या है? उसके दरबार में एक विद्वान् भी था। उसने कहा - महाराज, यदि ऊपर से देखें तो जमाना ज्यों का त्यों है, जमाने में कोई अन्तर नहीं है। लेकिन मैं अपने अनुभव की एक घटना सुनाना चाहता हूँ जिससे आपको समझ में आयेगा कि जमाने में क्या बदला है।

बोला - आज से बीस वर्ष पहले मैं जब जवान था। मेरे पड़ोस में एक स्त्री रहती थी, मैं जब कभी भी उसे देखता तो उसमें मुझे मेरी बहिन का रूप दिखाई पड़ता था। और उसे मैं हमेशा भगिनीवत् सम्मान दिया करता था। राजन्! आज बीस वर्ष बाद मैं बूढ़ा हो गया हूँ और वह पड़ोसन आज भी दिखती है। लेकिन जब कभी मैं उसे देखता हूँ तो मैं उसे अपनी वासना पूर्ति का आधार मानता हूँ। महाराज, जमाना वही का वही है केवल हमारी दृष्टि बदल गयी। अब वह बहिन नहीं केवल भोग की वस्तु दिखती है।

बदल गई है सोच हमारी

बन्धुओ, सोच का परिवर्तन ही जमाने का परिवर्तन है। सोच ही बदलती है। सोच ही हमारे जीवन को महान् बनाती है और सोच के कारण ही हमारे जीवन का पतन होता है। पहले के लोगों की सोच नितान्त आध्यात्मिक हुआ करती थी। लोग भवभीरु हुआ करते थे। पुण्य-पाप का विवेक हुआ करता था। करनी-अकरनी का भेद समझते थे। आज के लोगों की सोच बुरी तरह प्रभावित हो गयी है। आज जो यह मल्टी चैनल और मल्टी मीडिया है, उसके माध्यम से हमारी सांस्कृतिक चेतना पर बहुत बुरी तरह से प्रहार हो रहा है। आज जो कुछ हुआ है उसी का नतीजा है। इन सबके माध्यम से जो कुछ भी प्रभावित हो रहा है तो वह मनुष्य का सोच है। जब सोच प्रभावित होता है तो मनुष्य शोकग्रस्त होने लगता है।

संत कहते हैं - यदि जीवन को सुखी बनाना चाहते हो तो अपने सोच के स्तर को बदलिये। संसार में जो लोग जीते हैं उनमें तीन तरीके की सोच हुआ करती है - भौतिक सोच, व्यावहारिक सोच और आध्यात्मिक सोच।

आज जीवन का उद्देश्य केवल मौज-मस्ती, आमोद-प्रमोद, खाओ-पिओ और खुश रहो, है। संसार में बहुसंख्यक लोग ऐसे ही हैं। आज के लोगों का एक ही मकसद हो गया है, जितना बने मौज करो। उनको जीवन की मौज नशे में दिखती है, आधुनिकता में दिखती है, बाहरी चमक-दमक में दिखती है, ताम-झाम में दिखती है लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि इनमें जीवन का असली मजा नहीं है अपितु ये तो जीवन को बहलाने के साधन हैं। आज देखा जाय तो पश्चिम के मुल्क सबसे ज्यादा भौतिकता की सोच से ग्रसित हैं। भौतिक जगत् में पश्चिमी लोगों ने जितना विकास किया है, हम पूरब के लोग अभी बहुत पीछे हैं। वे भौतिकता के चरम पर पहुँचे हैं। लेकिन जब उनके जीवन में झाँक कर देखा जाता है तो यह बात समझ में आती है कि भौतिकता मनुष्य को सुखी नहीं बना सकती। आज उनको नींद की गोलियाँ फाँकनी पड़ती है, तब उनको नींद नसीब होती है। उन लोगों का सारा जीवन एक मशीन बन गया है। वे स्वयं एक यन्त्र बन गये हैं। उनका सारा जीवन यन्त्रवत् है।

जितना अधिक तनाव, जितनी अधिक चिन्ता, जितनी अधिक कुण्ठा, जितनी

अधिक हताशा और दुराशा उनमें है, उतनी आज भी पूरब में नहीं है। यही कारण है कि डॉयबोर्स जैसी घटनाएँ जितनी अधिक वहाँ होती हैं, उतनी अभी पूरब में और खासकर भारत जैसे देश में नहीं होती। वे अपनी सोच को भोग रहे हैं। उनका मन जब तनावग्रस्त होता है, वे जब सब तरफ से परेशान हो जाते हैं, तब उन्हें नशे और क्लब का सहारा लेना पड़ता है। पर इससे उनको समाधान नहीं मिलता।

जब मनुष्य का चित्त उद्विग्न होता है तो वह मन की शान्ति चाहता है। शान्ति मनुष्य की मूल अभीप्सा है। वह चाहता है शान्ति, पर वह क्या करे? उसे कुछ बताया ही नहीं कि शान्ति का मूल मन्त्र क्या है? उसने शान्ति का रसास्वादन कभी किया नहीं, शान्ति के विषय में कभी जाना ही नहीं। जब कभी भी शान्ति की प्यास हुई तो उसने शराब की बोतल को हाथ में लिया। शराब पीकर कुछ देर के लिये वे मदमस्त हो गये। लेकिन जैसे ही शराब का नशा उतरता है, उसकी अशान्ति कई गुनी होकर हावी हो जाती है।

क्लब कल्चर के माध्यम से, सभा-सोसायटियों में घूमकर के व्यक्ति अपने मन को बहला तो सकता है, पर शान्ति नहीं पा सकता।

संत कहते हैं - बाहर के जितने भी साधन हैं वे मन को बहलाने में जरूर निमित्त बन सकते हैं, मन को बदल नहीं सकते। लेकिन मन की शान्ति मन को बहलाने से नहीं अपितु मन को बदलने से प्राप्त होती है। और मन का बदलाव केवल सोच पर निर्भर करता है। यह तभी संभव है, जब मनुष्य की सोच आध्यात्मिक हो।

आज जो भौतिकता में जी रहे हैं, उनका हाल बेहाल है। पश्चिम में बहुत से भारतीय लोग भी हैं। यह बताने में मुझे गौरव की अनुभूति होती है कि भारतीय लोग पश्चिम में गये हैं, उन्हें उस संस्कृति का विकृत रूप देखने से उनकी भारतीय संस्कृति के प्रति श्रद्धा बढ़ी है। लगाव बढ़ा है।

एक युवती अकसर मेरे पास आया-जाया करती है। वह अमेरिका में रहती है। अभी कुछ दिन पहले वह आयी तो मैंने उससे पूछा - वहाँ की न्यू जनरेशन की सोच कैसी है? उसने जो जबाव दिया उसे सुनकर आश्चर्यचकित हो गया। उसने कहा - जैसा यहाँ के लोग पचास वर्ष पहले सोचते थे। मैंने कहा - क्या कहती

हो? वह बोली - महाराज, भले हम महिने में एक दिन मन्दिर जाते हैं। लेकिन जितनी भी स्त्रियाँ हैं, वे साड़ी पहनकर जाती हैं और सिर पर पल्ला लगाकर जाती हैं। पहले भारत के लोगों में अपने माँ-बाप के प्रति जो भावना हुआ करती थी, उनका चरण-स्पर्श किया करते थे, एक दूसरे को आत्मीयता के जो संस्कार दिये जाते थे, उसे पूरी तरह हम लोग निभा रहे हैं। यहाँ आने के बाद लगता है कि हमारे भारतीय जीवनमूल्य कितने महान् हैं। ये उसके शब्द थे।

दुर्लभता में हर वस्तु का मूल्य समझ में आता है। विदेश में रहकर उसने पश्चिम की जो भौतिक सोच है, उसे पास से देख लिया। यहाँ के लोग जो पचास वर्ष पहले सोचते थे, वहाँ के लोग और खासतौर पर न्यूजनरेशन, आज वह सब कुछ सोच रही है। क्योंकि उनको मालूम है कि जिसको हम औषधि के रूप में स्वीकार कर रहे हैं, वही हमारी बीमारी को बढ़ाने वाली है।

चाहत अच्छा दिखने की

जब दवाई ही आदमी की बीमारी को बढ़ायेगी, तब आदमी का क्या होगा? हम जो कुछ भी कर रहे हैं, ट्रीटमेंट के नाम पर अपना जरूर रहे हैं, लेकिन यह ट्रीटमेंट ठीक नहीं। क्योंकि मरहम से ही मर्ज बढ़ रहा है। काम कैसे चलेगा?

भौतिक सोच जीवन की बहुत खराब सोच है। जो लोग केवल मौज-मस्ती और आमोद-प्रमोद को अपने जीवन का मूल लक्ष्य मानकर चलते हैं वे भूल में हैं, उनकी चेतना बहुत निचले स्तर की है। ऐसे लोगों को पदार्थ के मध्यम रहकर भी जीवन के सार से वंचित रहना पड़ता है। ये जीवन के सार को उपलब्ध करने में कभी समर्थ नहीं हो सकते।

संत कहते हैं कि भौतिक सोच से उबरिये। हमारे बीच जो लोग उठते-बैठते हैं, भौतिक सोच से ग्रसित लोग तो कम हैं, लेकिन उनकी सोच व्यावहारिक है। व्यावहारिक सोच का मतलब क्या? वह सोच हमें अच्छा बनने की प्रेरणा देती है और एक सोच होती है जो अच्छा दिखाने की होती है।

हम लोग अच्छा बनने की सोच कम रखते हैं, अच्छा दिखने की सोच बहुत ज्यादा रखते हैं। यह व्यावहारिक सोच है। दूसरों के सामने अपने आपको बेहतर

दिखाने की, बेहतर साबित करने की जो प्रवृत्ति है, वह हमारी व्यावहारिक सोच और उस सोच का परिणाम है।

वे अपने आपको बहुत बढ़िया बनाये रखना चाहते हैं। अपने आपको टिपटाय बनाये रखना चाहते हैं। बाहर से तो हम टिपटॉप रहते हैं, पर अन्दर से खोखले ही बने रहते हैं। यह सोच एक गलत सोच है। जब तक तुम ऐसे कार्यों से प्रभावित रहेगे, तब तक अन्तर्करण को पवित्र नहीं बना सकते। बाहर से हम बहुत बड़े धर्मात्मा दिखते हैं, समाजसेवी दिखते हैं। बाहर से हम बहुत बड़े सभ्य और सरल दिखाई पड़ते हैं, लेकिन हमारे अन्तरंग में जैसी सच्चाई और पवित्रता होनी चाहिए, उसे प्रस्थापित नहीं कर पाते। यह सब व्यावहारिक सोच का नतीजा है।

हम जो कुछ करते हैं, दूसरों को दिखाने के लिये करते हैं। घर में बहू आयी, उससे हम कहते हैं - तुझे जैसा करना हो करना, लेकिन इस बात का ध्यान रखना, कि ऐसा मत करना जो दूसरों को खराब लगे।

अरे, हम उन्हें यह क्यों नहीं कहते - तुम्हें वही करना है जो तुम्हारे जीवन को बेहतर बनाये। व्यावहारिक सोच यही है, जो अपनी कसौटी दूसरों को बनाता है। हम सदैव दूसरों को अपनी सोच का माध्यम बनाकर चलने के अभ्यासी हो गये हैं, कि दूसरे हमारे बारे में क्या सोच रहे हैं? दूसरों की कसौटी पर खरा उतरूँ।

संत कहते हैं - स्वयं की कसौटी पर खरा उतरने की कोशिश करो। दूसरे अच्छा माने, इस सोच की जगह स्वयं की दृष्टि में अच्छा बनिये। स्वयं के प्रति जागरूक बनिये, स्वयं के प्रति ईमानदार बनने की कोशिश कीजिए। लेकिन आज सारी व्यवस्थायें लड़खड़ा गयी हैं। आज ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो बढ़-चढ़कर सामाजिक कार्यों में हिस्सा लेते हैं और यदि उनके जीवन को नजदीक से देखते हैं तो वे अपने घर-परिवार की व्यवस्था ही बिगाड़े बैठे हैं। उनको अपने माँ-बाप की सेवा करने की फुरसत नहीं। उनकी देखरेख करने की फुरसत नहीं। उनकी कोशिश यही है कि मैं समाज में ज्यादा-से-ज्यादा प्रतिष्ठा अर्जित कर सकूँ। समाज में अच्छा माना जा सकूँ, लेकिन घर में जो बैठे हैं, उनका कोई ध्यान नहीं। यह व्यवहारिक सोच का नतीजा है। हम सब काम में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे हैं, लेकिन जो हमारा मूलतत्त्व है उसे उपेक्षित कर रहे हैं। ऐसे लोगों को मैं जानता हूँ कि

सुबह पाँच बजे कुत्ते को घुमाने का समय है, लेकिन अपने बीमार माता-पिता को अस्पताल ले जाने का समय नहीं है। यह क्या है? यह हमारी सोच की विकृति का नतीजा है। हम अपना स्टेटस तो ऊँचा बनाना चाहते हैं पर जीवन स्तर को निर्मल बनाने का प्रयत्न नहीं करते।

मित्र बने परिवार आपका

संत कहते हैं ऊँचाई सदैव गहराई सापेक्ष होती है। पेड़ उतना ही बढ़ता है, जितनी कि उसकी जड़े गहराती हैं। हम ऊँचे आसमान में तो जाना चाहते हैं, लेकिन अपनी जमीनी हकीकत को भुला देते हैं। आचरण की जितनी गहराई होगी, जीवन में उतनी ही प्रतिष्ठा बढ़ेगी। इस बात को कभी मत भूलिये। ऐसी व्यवहारिकता को तिलांजलि दीजिए, जो ऊपर से तो मधुर बनाती है और भीतर में कड़ुवाहट भर देती है।

आज ऐसे लोग दुनिया की निगाहों में अच्छे जरूर हो सकते हैं, पर परमार्थ की निगाहों में नहीं। ऐसे लोग प्रतिष्ठा भले पा सकते हैं, लेकिन प्रसन्नता नहीं। आप थोड़ा सोचिये, आप जहाँ जाओ सम्मान मिले, माला पहनाया जाय। आपको हर जगह आगे की पंक्ति में बैठने का अवसर दिया जाय। सब जगह तो आपको सम्मान मिले और आपके ही घर में आपके बेटे ठीक ढंग से बात न करें, आपकी बहू आपको ठीक सम्मान न दे सके, पति और पत्नि में जो सामंजस्य होना चाहिए वह न हो सके, आपके-अपने पिता से आपके प्रति सद्भाव न मिल सके या पिता के प्रति आपके मन में सद्भाव न हो सके, तो ऐसी प्रतिष्ठा आपकी किस काम की? आप विचार कीजिए, ये प्रतिष्ठा आपको क्या देगी? इसका क्या मतलब है?

संत कहते हैं - प्रतिष्ठा नहीं, प्रसन्नता को अपने जीवन का साध्य बनाइये। हम प्रतिष्ठा पाने के चक्कर में तो चौबीसों घण्टे लगे रहते हैं, लेकिन अपने को प्रसन्न बनाये रखने की सोच विकसित नहीं कर पाते। प्रसन्नता कब आयेगी आपके अन्दर? सबसे पहले प्रसन्नता की शुरूआत अपने परिवार से करना चाहिए। परिवार के जितने भी सदस्य हैं, वे एक-दूसरे के प्रति सद्भाव रखें। उनमें आत्मीयता हो, निजी चर्चाएँ आप आपस में कर सको। एक-दूसरे के दिल मिल सकें, एक-दूसरे के विचार मिल सकें। एक-दूसरे के सुख-दुःख में सहभागी बन सकें और आप

अपने व्यवहार से अपने परिवार को इस तरीके से जोड़ सको कि आपके सुख-दुःख में वह मरने-मिटने को तैयार हो सके तो मैं समझूँगा कि आपने वास्तव में सच्ची सफलता अर्जित की है। वस्तुतः वही सफलता मूल्यवान् है जो जीवन को प्रसन्नता से भर सके। प्रसन्नता के मूल्य पर पायी गयी सफलता को मैं सबसे बड़ी असफलता मानता हूँ।

दुनिया में असफल वह नहीं, जिसके पास कार-बंगले न हो, दौलत न हो। दुनिया में असफल वह है जो इन सबको पाने के बाद भी प्रसन्नता को नहीं पा सका। सुख की श्वास नहीं ले सका।

ध्यान रखना, कार-बंगले मेंटेन करना बहुत सरल है, धन-पैसा जोड़ लेना बहुत सरल है, लेकिन अपने मन की प्रसन्नता को टिकाये रखना बहुत कठिन है। वह प्रसन्नता आप पा सकते हैं, बशर्ते आपकी वैसी सोच बने। हमारे धर्मशास्त्रों में जिस जीवन शैली का उपदेश दिया गया है वह अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिये ही दिया गया है।

बाहरी माध्यमों से आप लोकप्रिय बन सकते हैं, पर संत कहते हैं आप लोकप्रिय बने या न बनें लेकिन परिवार प्रिय अवश्य बनें। आप देखिए कि आप परिवारप्रिय हो सके कि नहीं। यदि आप परिवारप्रिय नहीं बन सके हैं तो आपकी लोकप्रियता अर्थहीन है, केवल ऊपरी चमक है। जो अपने घर को नहीं सम्हाल सकता वह समाज की सम्हाल क्या करेगा ? जो अपने घर की सेवा नहीं कर सका वह समाज की सेवा क्या कर सकेगा ? हम मूल पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। इसलिये मैं कहता हूँ कि यदि आप व्यवहार को सुधारना ही चाहते हो तो उसे भीतर से सुधारें और उसकी शुरूआत घर से करें।

एक-दूसरे के प्रति सम्बन्धों में मधुरता हो। हमारी संस्कृति में एक-दूसरे के प्रति सम्बन्धों का आधार प्रेम और आत्मीयता है। हमारे सम्बन्ध प्रेम पर आधारित रहे, आत्मीयता पर आधारित रहे। हमारे समाज के जो मूलतत्त्व हैं, उनमें परस्परता और बन्धुत्व को सबसे अधिक प्रमुखता दी गई है। जो प्रेम और आत्मीयता के बल पर प्रकट होते हैं। आज वह सब छूटता जा रहा है। हमने उसका स्थान आवश्यकता और उपयोगिता को दे दिया है। अब हमने व्यक्तियों को व्यक्तियों की तरह नहीं,

चीजों की तरह ट्रीट करना शुरू कर दिया है। यह हमारी सोच की विकृति का परिणाम है। आप देखिए, किसी से प्रेम के सम्बन्ध बनाने में हमें बहुत मेहनत करनी पड़ती है और किसी से घृणा के सम्बन्ध बनाना हो तो एक पल में ही बन जाते हैं। हमें किसी से आत्मीयता स्थापित करनी हो तो बहुत मसक्कत करनी पड़ती है। लेकिन किसी से विद्वेष करना हो तो एक पल पर्याप्त है।

मतलब यह है कि घृणा, विद्वेष, वैमनस्य और मात्सर्य के सम्बन्ध स्थापित करना हो तो हम उसमें माहिर हो चले हैं लेकिन प्रेम और आत्मीयता के क्षेत्र में बहुत पिछड़ गये हैं।

संत कहते हैं - आज दुनिया बेकवर्ड और एडवांस होने की बात करती है। अपने आपको एडवांस मानती है और दूसरों को बेकवर्ड। अध्यात्म के आचार्यों से पूछा जाय तो जिस व्यक्ति के भीतर जितने आत्मिक तत्त्व विकसित हुए हैं, वह उतना ही एडवांस है और जो अपने जीवन के प्रेम और आत्मीयता जैसे तत्त्वों से जितना दूर है वह उतना ही बेकवर्ड है, उतना ही पिछड़ा है।

हम अपने मूलतत्त्वों से न पिछड़ें, यह हमारी कोशिश होनी चाहिए। इसलिए मैं आप सबसे कहता हूँ कि अपनी सोच को ऐसी बनायें, जो न केवल व्यवहार में प्रदर्शित हो अपितु उससे अपना स्वयं का जीवन भी सुवासित हो।

अनुभूति का सुख : सुख की अनुभूति

यदि हमारे पास पैसा होता है, दौलत होती है, प्रतिष्ठा होती है, प्रभुता आती है तो हम अपने आपको सुखी मानते हैं। हमारे बाहिरी स्टेट्स के आधार पर लोक में हमारी प्रशंसा होती है तो हमें सुख की अनुभूति होती है। यह सुख अभिप्राय का सुख है। क्योंकि हम जानते हैं कि यह प्रशंसा केवल बाहर के तामझाम के कारण है। जब तक यह तामझाम है तब तक ही यह सारी प्रशंसा है, जिस दिन तामझाम खतम उस दिन सारी प्रशंसा भी खतम। फिर भी हम मानते हैं कि मेरे पास पैसा है इसलिये मुझे सुख मिला। मेरी प्रतिष्ठा है, लोग मुझे पसंद करते हैं इसलिये हम मानते हैं कि प्रतिष्ठा से मुझे सुख मिला। मेरे पास प्रभुता है, सामर्थ्य, शक्ति, सत्ता और सम्पदा है इसलिये लोग सम्मान करते हैं, अतः हम मानते हैं कि इससे मुझे सुख मिला।

परनिमित्त से जो सुख की अनुभूति होती है वह केवल अभिप्राय का सुख है। जो सुख दूसरों पर निर्भर हो वह अभिप्राय का सुख है। वह स्वाश्रित नहीं है। एक आदमी जो दूसरों की प्रशंसा से सुखी होता है, वह दूसरों की निन्दा में दुःखी भी हो जायेगा। पता नहीं, तुम्हारे ही प्रशंसक कब निन्दक हो जाय। अकसर यही होता है कि मुँह पर जो प्रशंसा करते हैं, पीठ पीछे वे निन्दा करते हैं। यह पक्का समझना।

नीति कहती है - सामने की प्रशंसा पीठ पीछे निन्दा भी करा सकती है। इसलिये उस पर निर्भर मत होओ। जब तक तुम्हारी दृष्टि निमित्ताधीन रहेगी, तुम्हारे पुण्य के योग से अनुकूल निमित्त मिल भी जायेगे, और उनसे जो सुख मिलेगा वह केवल अभिप्राय का सुख होगा। यानि मान्यता का सुख होगा। हमने मान रखा है कि इसमें सुख है।

अनुभूति का सुख क्या है? मन की प्रसन्नता, संतुष्टि, निर्मलता और पवित्रता। इससे जो सुख मिलता है वह अनुभूति का सुख है। जब हमारे चित्त में एक ठहराव आ जाता है, उससे एक सुख मिलता है। वह अनुभूति का सुख है। इसमें दूसरों के ऊपर कुछ भी डिपेंड नहीं करता है कि सामने वाला हमें अच्छा कह रहा है या बुरा। यह ज्यादा अर्थपूर्ण नहीं रह जाता कि दूसरे हमारी तारीफ कर रहे हैं या टिप्पणी। यह भी ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं रह जाता कि कोई हमारे गीत गा रहा है या गाली दे रहा है। वह हमारे भीतर से जुड़ा होता है। अनुभूति का सुख हमारी सोच की निर्मलता पर प्रकट होता है। और अभिप्राय का सुख हमारे बाहिरी ठाठबाठ पर निर्भर करता है।

संत कहते हैं - महत्त्व दीजिए अनुभूति के सुख को, जो आपको सदैव प्रसन्नता से सराबोर रखे। आप जीवन की सफलता का आधार केवल बाहिरी चीजों को न मानिये। आप अपनी सफलता का मन की प्रसन्नता को मानिये। यदि इसकी तरफ आपका ध्यान केन्द्रित होगा तो सुनिश्चित मानिये कि आपका जीवन सुखी बन सकेगा।

आध्यात्मिक सोच अपनाये

तीसरी सोच है आध्यात्मिक सोच। यह सबसे महत्त्वपूर्ण है। आज हमें अपनी सोच को बदलने की बहुत ज्यादा जरूरत है। अपनी सोच को आध्यात्मिक

बनाइये। आध्यात्मिक सोच का मतलब है अपने अन्दर झाँकने की वृत्ति, अपने अन्तस् के निरीक्षण करने की प्रवृत्ति। अपने आपको देखिए, हमारे भीतर कौन-कौन सी बुराइयाँ हैं। उनका प्रतिकार कैसे करें, उन बुराइयों को दूर करने का उपाय क्या है? अपने विकारों के विजय का मार्ग क्या है?

जब आपकी सोच आध्यात्मिक बनेगी, तब आप अपने भीतर झाँकना शुरू करोगे। जब आप अपने भीतर झाँकोगे, अपनी खामियाँ दिखने लगेंगी तो अपने आप जीवन में परिवर्तन शुरू हो जायेगा। आप दर्पण के सामने रोज जाते हैं। दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखते हैं। चेहरे पर कोई दाग-धब्बा दिखता है तो तुरन्त उसे साफ कर डालते हैं। दर्पण को कुछ कहना नहीं पड़ता। हमने दाग देखा और उसे साफ कर लिया। यानी हमें जहाँ विकार दिखाई पड़ता है, हम तुरन्त ही उसके प्रक्षालन के लिये तत्पर हो जाते हैं, सचेष्ट हो जाते हैं। ऐसे ही जब हमें अपने भीतर के विकार दिखने लगेंगे तो उनके परिमार्जन का प्रयास तत्क्षण शुरू कर देंगे।

मुश्किल तो यह है कि अभी हमें भीतर के विकार दिखते ही नहीं। दिखेंगे कहाँ? अभी तो हमने भीतर देखने की कोशिश ही नहीं की। जब तक हम भीतर देखेंगे नहीं तब तक भीतर की गन्दगी दिखाई कैसे पड़ेगी!

संत कहते हैं - भीतर देखने की कोशिश कीजिये। अपनी सोच को आध्यात्मिक बनाने का प्रयास कीजिये। जिस पल आप भीतर देखने लगोगे, आपकी अन्तर्दृष्टि प्रकट होगी, आपके रूपान्तरण की प्रक्रिया अपने आप आरम्भ हो जायेगी। फिर कुछ कहने और करने की आवश्यकता और अपेक्षा भी नहीं रहेगी। इसलिये संत कहते हैं कि अपनी सोच को आध्यात्मिक बनाइये। जैसी आप सोच रखोगे, वैसा आपका जीवन बनेगा।

जग में बहुत सारी घटनायें घटती हैं, देखने वाले देखते हैं। लेकिन सबका अर्थ अपनी-अपनी सोच पर निर्भर करता है। एक जगह एक युवती का स्वर्गवास हो गया। अप्सरा-सम वह युवती असमय में कालकवलित हो गयी। उसकी लाश को देखता हुआ एक दीवाना निकाला तो उसने सोचा कि काश! यह जिंदा होती तो मैं अपने मन की कामना पूरी कर पाता। उसने शव देखा और उसके मन में विकार आया और वह विकार से प्रेरित हो गया।

दूसरी ओर, एक नृत्यांगना निकली। उसने उसे देखा - आह! अद्भुत रूप, यदि आज यह जिंदा होती तो अपने हाव-भाव, विलास से सारी दुनिया को मुग्ध कर देती। दुनिया की एक श्रेष्ठ नृत्यांगना कहला सकती थी।

एक वेश्या भी निकली और उसकी दृष्टि भी उस पर पड़ी। उसने कहा - हाय! यह असमय में मर गई। यदि इस जैसी रूपवान् स्त्री मेरे पास होती तो मेरा धन्धा दिन दूना रात चौगुना होता।

इसी बीच एक संत का भी गुजरना हुआ, उनकी भी दृष्टि उस पर पड़ी। उसके रूप और यौवन को देखकर उन्होने सोचा - भरी जवानी में यह मर गयी। काश, इसने अपने जीवन में संयम को अपनाया होता तो अपने जीवन का कायाकल्प कर लिया होता।

घटना एक है, नतीजे अलग-अलग। वस्तुतः नतीजे तो हमारे नजरिये पर निर्भर करते हैं कि हम किस घटना को किस रूप में देखते हैं, सब कुछ उस पर निर्भर करता है। इसलिये अपने सोच को बदलने की कोशिश कीजिए। व्यावहारिक नहीं, आध्यात्मिक सोच के स्वामी बनिये। हमारी कोशिश होगी, उसी आध्यात्मिक सोच के उभार की। हम अपने अन्तरंग में उसे कैसे उभारें। संत कहते हैं - हमारे भीतर अमृत का सागर है। लेकिन उसके ऊपर अज्ञान का ढक्कन चढ़ा हुआ है। जब उस ढक्कन को अलग करेंगे तो उससे अमृत स्रोत अपने आप फूट पड़ेगा। उस ढक्कन को अलग करना है।

छाया हम पर मोह का पर्दा

जब तक हम पर मोह और अज्ञान हावी होगा, तब तक हम अपने जीवन के वास्तविक तत्त्व का परिचय नहीं पा सकेंगे। उसको हटाने का प्रयास कीजिये। हमारी सोच बदलेगी तो हमारा सारा जीवन अपने आप बदल जायेगा। हमारे अन्दर वह सब घटित होगा, जो अब तक घटित नहीं हो सका है।

०३-४-२००६ चौरंगी

क्रोध को कैसे जीतें

एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो ।

मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ॥

आध्यात्मिक दृष्टि का जागरण

शिष्य गुरु के चरणों में वर्षों से साधनारत था। लगातार बारह वर्ष की कठिन साधना के फलस्वरूप आज उसे एक बड़ी सिद्धि मिली। उमंगों से भरकर वह गुरुचरणों में पहुँचा। गुरु से कहा - आपके आशीष् से हमारी साधना सिद्धि में परिणत हो गयी है। आपके परमाशीषों से मैंने जल तरणी विद्या सीख ली है। गुरु ने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। शिष्य ने सोचा - शायद गुरु ने ठीक ढंग से सुना नहीं। अपनी बात को दुहराते हुए फिर से कहा - गुरुदेव! आशीर्वाद दें, आपकी कृपा से मैंने जलतरणी विद्या सीख ली है। अब की बार गुरु मुस्कुराकर रह गये। शिष्य बड़ा अचम्भित हुआ। उसने पुनः कहा - गुरुदेव! आशीर्वाद दीजिए, मैंने जलतरणी विद्या सीख ली है। बारहवर्ष की साधना आज सार्थक हुई है। अब की बार गुरु ने अपना मौन तोड़ा और शिष्य को सम्बोधते हुए कहा - तुमने बारह वर्ष की साधना, दो पैसे में गवाँ दी। शिष्य को बड़ा आश्चर्य हुआ।

इतनी बड़ी सफलता, जिसके लिये बड़े-बड़े साधक भी तराशते हैं। बारह वर्ष की कठोर तपस्या के परिणाम स्वरूप मैंने जिस सिद्धि को पाया। गुरु कह रहे हैं कि उसे तूने दो पैसे में गवाँ दिया। मतलब क्या? कहाँ तो अपेक्षा थी, गुरु पीठ ठोकेंगे, शाबासी देंगे और यहाँ तो उलटा ही हो रहा है।

शिष्य को कुछ समझ में नहीं आया। शिष्य के मनोभावों को समझकर गुरु ने कहा - तूने जलतरणी विद्या सीखकर कौन-सी उपलब्धि कर ली? जलतरणी विद्या सीखने से तुझे क्या मिला? नाविक को दो पैसा देता तो वह पार कर देता। तूने

केवल दो पैसे बचाने के चक्कर में बारह वर्ष की साधना लगा दी। अरे, वही ताकत तूने भवतरणी विद्या के लिये लगायी होती तो तेरा उद्धार हो चुका होता।

बन्धुओ, यह भारतीय संस्कृति का मूल तत्त्व है। हमारे यहाँ सबसे ज्यादा महत्त्व आत्मा के कल्याण को दिया गया है। संसार की सब चीजें बहुत सहजता से उपलब्ध हो सकती हैं। लेकिन आत्मकल्याण का मार्ग सबको सुलभ नहीं होता। आत्मकल्याण का मार्ग केवल वे ही पा सकते हैं जिसके अन्दर आत्मदृष्टि का जागरण होता है। हमारी दृष्टि आध्यात्मिक हो। भौतिकदृष्टि से तो हम जन्म-जन्मान्तरों से प्रभावित रहे हैं और जिसकी जैसी दृष्टि होती है, उसकी वैसी ही सृष्टि होती है। जो भौतिक सृष्टि को सब कुछ मानते हैं उनकी दृष्टि में भौतिक उपलब्धि ही जीवन की चरम उपलब्धि होती है। और जिन्हें अध्यात्म का रस लग जाता है, या यूँ कहें जिन्हें अध्यात्म का रंग चढ़ जाता है, उन्हें जगत की समस्त जड़ चीजें मूल्यहीन नजर आने लगती हैं। वे केवल आत्मकल्याण की बातों को ही प्रमुखता देते हैं। हमारा प्रयास होना चाहिए ऐसे ही आध्यात्मिक दृष्टि के जागरण का। आध्यात्मिक दृष्टि के जागरण का मतलब है अपने भीतर झाँकने की दृष्टि की अभिव्यक्ति। अपने अन्दर देखना, आत्मनिरीक्षण करना, आत्मदृष्टि प्रकट करना। अभी तक हमारी सारी दृष्टि बहिर्दृष्टि रही है, बाहर देखने के अभ्यासी रहे हैं। हमने अभी तक भीतर झाँककर देखने की कला नहीं सीखी है।

संत कहते हैं - भीतर झाँको। भीतर देखने की कोशिश करो। वैसे हैं तो हम बहुत सुन्दर और निखरे हुए लेकिन हमारे मौलिक स्वरूप में बहुत सारी गंदगी छा गयी है, विकार छा गया है, साफ-स्वच्छ दर्पण को भी यदि समय-समय पर पोछा न जाय तो उस पर भी धूल की मोटी पर्त चढ़ जाती है। जब दर्पण पर धूल चढ़ जाती है तो उसमें हमें अपना प्रतिबिम्ब देखने का सौभाग्य नहीं मिलता। धूल चढ़े हुए दर्पण में कोई कभी प्रतिबिम्ब नहीं देख सकता। ऐसे ही चित्त पर जब तक विकारों की धूल जमी होती है, तब तक हम अपने स्वरूप के दर्शन से वंचित रहते हैं। जिनके अन्तरंग में आध्यात्मिक दृष्टि की अभिव्यक्ति होती है, वे अपने आत्मिक स्वरूप को निहारते हैं और उसे बुहारकर साफ-सुथरा बनाने का प्रयास करते हैं।

देखें, हम क्या है और हमें क्या होना चाहिए ? आज हम अपने भीतर झाँकते हैं तो हमें समझ में आता है कि हम क्रोधी हैं, हम मानी हैं, हम मायावी हैं, हम लोभी हैं, हम रागद्वेषी हैं, हम मोही हैं, हम कामी हैं, हम अनेक प्रकार की बुराईयों से ग्रसित हैं। हम जो हैं वह हमें होना नहीं चाहिए और जो हम नहीं हैं वह हमें होना चाहिए। हमें होना क्या चाहिए ? हमें होना चाहिए शान्त, शुद्ध, संतुष्ट, परमतृप्त, आनन्दमया लेकिन वह हमारे भीतर घटित नहीं हो पा रहा है, जो घटित हो रहा है उसे भीतर नहीं होना चाहिए। इस बात का बोध हमें तब तक नहीं होता जब तक कि हम आत्मनिरीक्षण करना प्रारम्भ नहीं करते।

आध्यात्मिकदृष्टि की अभिव्यक्ति का कुल अर्थ इतना ही है कि अपने भीतर छाये हुए विकारों को देखना और निर्विकार छवि को पाने का उपक्रम प्रारम्भ कर देना। प्रयत्न शुरू कर देना। विकार हमारे ऊपर छाये हैं, जो हमें निर्विकार होने नहीं देते। जब तक हम विकारों को दूर नहीं करते, तब तक जीवन का सही मजा भी प्राप्त नहीं कर सकते। प्रश्न है इन विकारों को कैसे जीता जाए ? कैसे दूर किया जाए ? मैंने पहले दिन आप सबसे कहा था कि हमारे चित्त में अनेक विकार हैं। पर मन की शान्ति को प्रभावित करने वाले विकारों में प्रमुख विकार हैं - चिन्ता, क्रोध, ईर्ष्या, अहं। कमोबेश हर व्यक्ति इनसे किसी न किसी रूप में प्रभावित है।

क्रोध नाम है अग्नि का

सबसे बड़ा विकार है क्रोध। उससे मुक्ति कैसे पाई जाय ? क्रोध किस तरह प्रभावित करता है ? थोड़ा विचार करें। क्रोध हमारी आत्मा का सबसे खतरनाक शत्रु है। हम हमेशा क्रोध के परिणाम देखते ही नहीं हैं भोगते भी हैं और उसके बाद भी उससे मुक्ति पाने का प्रयत्न हम नहीं कर पाते। जब तक व्यक्ति क्रोधाविष्ट रहता है, सुखी नहीं रह पाता। संत कहते हैं - जहाँ विकार है वहाँ बीमारी है, जहाँ बीमारी है वहाँ स्वास्थ्य नहीं। ये राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, छल, विद्वेष, वैमनस्य आदि जितनी भी बुराईयाँ हैं, ये सब एक प्रकार की मानसिक बीमारियाँ हैं, जो हमारे आन्तरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं। जब तक ऐसी बीमारी हमारे चित्त और चेतना पर हावी रहेगी, तब तक हम अपने आपको कभी स्वस्थ

नहीं बना सकेंगे। यदि हम अपने आपको स्वस्थ बनाना चाहते हैं तो हमें इन बीमारियों का उन्मूलन करना होगा। बीमारियों का उन्मूलन तभी संभव होगा, जब उनका लक्षण समझकर उसके उपचार की प्रक्रिया को अपनायेगे।

क्रोध हमारा सबसे प्रबल शत्रु है, जहाँ क्रोध होता है वहाँ कभी सुख नहीं रह सकता। हमारे पास सब कुछ है, धन-दौलत है, बढिया मकान है, अच्छी कार है, सब प्रकार की बाहरी अनुकूलताएँ हैं। इन सबके होने के साथ यदि हमारे मन में क्रोध उत्पन्न होता रहे तो इन सबके बीच भी हमारा मन उद्विग्न बना रहता है। आप विचार करना कि आपको सुख की अनुभूति कब होती है? जब क्रोधाविष्ट रहते हैं तब? या जब शान्त रहते हैं तब? सुख कब मिलता है? शान्त रहने में सुख मिलता है। यह हम जानते हैं, फिर बार-बार क्रोधित क्यों हो जाते हैं? हम भूल जाते हैं कि, क्रोध है ही ऐसा। क्रोध वह अग्नि है, जो सुख रूपी वृक्ष को भस्म कर डालती है। अग्नि जलाती है। जिसमें लगती है उसे जलाती है, जिसमें जन्मती है, उसे भी जलाती है। वह स्व-पर दाहक है। वह स्वयं भी जलती है और सामने वाली वस्तु को भी जलाती है। हो सकता है कि परिस्थितियाँ अनुकूल न हों तो जिसे जलाना चाह रहे हैं, उसे न जला सके। लेकिन जहाँ उत्पन्न होती है उसे तो जलना ही पड़ता है। दियासलाई से किसी चीज़ को हम जलायें, कोई ज़रूरी नहीं कि वह जले ही। हो सकता है कि हवा का झोंका आ जाय। हो सकता है ईंधन गीला हो तो वह न जल पाये। लेकिन जिस दियासलाई में आग लगी है वह तो जलती ही है। हम क्रोध तो दूसरों को भस्म करने के लिये करते हैं। संत कहते हैं कि ज़रूरी नहीं कि दूसरों को तुम प्रभावित कर पाओ या नहीं, लेकिन यह क्रोध की आग तुम्हें तो जला ही डालेगी। जो तुम्हारे सुख को भस्म कर डाले उसका नाम क्रोध है। जो तुम्हारी शान्ति को खतम कर डाले उसका नाम क्रोध है। जो तुम्हारे चैन को खाक कर दे उसका नाम क्रोध है। वह हमें प्रभावित करता रहता है। यह एक प्रकार का पागलपन है। जब व्यक्ति के चित्त में उन्मत्तता छा जाती है तो उसे कुछ सुध-बुध नहीं रहती। सब कुछ रहने के बाद भी व्यक्ति को सुख नहीं होता। कोई आदमी पागल है, अब भले ही वह करोड़पति या अरबपति हो, तो भी उसे बाँधकर रखा जाता है। पागल व्यक्ति को बाँधकर रखते हैं। उसके पास धन-पैसों की कमी नहीं, उसके पास

सुखसाधनों की कमी नहीं। उसके घर में नौकर-चाकर सब कुछ है, सब प्रकार की अनुकूलताएँ हैं, पर उस पागल व्यक्ति को उसका कोई लाभ नहीं मिल पा रहा है, क्योंकि वह पागल है।

जिसका चित्त विक्षिप्त हो जाता है, जो पागल हैं, वे सुख को प्राप्त नहीं कर पाते। संत कहते हैं - सुख की अनुभूति के लिये मन की स्थिरता ज़रूरी है। क्रोध हमारे मन को अस्थिर बना देता है। जिसका चित्त क्रोध से उद्विग्न होता है वह कभी सुख का अनुभव कर ही नहीं सकता। सुखानुभूति के लिये चित्त को स्थिर बनाये रखना ज़रूरी है। इसलिये शास्त्रकार कहते हैं - **क्रोधः शमसुखार्गलः** क्रोध सुख के लिये एक प्रकार का बन्धन है। जहाँ क्रोध है वहाँ सुख आ ही नहीं सकता। इस बात को हमेशा ध्यान में रखें। यदि अपने जीवन को स्थायी रूप से सुखी बनाये रखना चाहते हैं तो अपने क्रोध पर नियन्त्रण करने का प्रयत्न करें।

सब कुछ भस्म करे क्रोधानल

प्रश्न है क्रोध को नियन्त्रित कैसे किया जाय? हम पहले यह जाने कि आखिर क्रोध कैसे उत्पन्न होता है? उसके साथ यह भी जाने कि क्रोध का हम पर प्रभाव क्या पड़ता है? क्रोध से हानियाँ क्या हैं? यह बात अलग है कि जितने लोग भी क्रोध में जीते हैं वे क्रोध के परिणाम को अच्छी तरह से जानते हैं, भोगते भी हैं, लेकिन मुश्किल यह है कि जिस समय वे क्रोध में होते हैं तब उन्हें उसका अता-पता नहीं होता। शास्त्रकार कहते हैं - क्रोध है ही ऐसी बला, जिसकी शुरुआत अविवेक से होती है और अन्त पश्चात्ताप से। जिस समय हम क्रोध में जीते हैं हमें कुछ सुधबुध नहीं रहती। जब क्रोध कर गुजरते हैं, तब हमें लगता है कि हमने तो गलती कर दी। यह एक बहुत बड़ी गलती है। और तब हमारे हाथ में कुछ होता नहीं। क्योंकि आग तो अब लग चुकी। अब क्या बचा सिवाय पश्चात्ताप के! इसके अलावा हमारे पास कुछ भी शेष नहीं रहता।

संत कहते हैं यही समझने की ज़रूरत है। एक आचार्य ने क्रोधी व्यक्ति की तुलना एक शराबी व्यक्ति से करते हुए बहुत मौलिक बात लिखी।

जब व्यक्ति शराब पीता है तो उसकी आँखें लाल हो जाती हैं, लड़खड़ाते

कदमों से चलता है, उसके हाथ-पैर अकड़ने लगते हैं, कुछ होश नहीं रहता, मुँह से यद्वातद्वा बोलता है, कुमार्ग की ओर निकल जाता है, लक्ष्यभ्रष्ट हो जाता है। उसे पता ही नहीं होता कि मुझे कहाँ जाना चाहिए और कहाँ नहीं। कई-कई बार वह नालियों के किनारे पड़ा दिखाई भी पड़ता है। ये शराब पीने वाले व्यक्ति की स्थिति है।

संत कहते हैं - क्रोधी व्यक्ति की भी मनोदशा कुछ ऐसी ही हो जाती है। आप पर जिस समय क्रोध का ज्वार आता है, आप महसूस करना कि उस समय क्रोध के ज्वर से आँखें लाल हो जाती हैं, हाथ-पैर फड़फड़ाने लगते हैं। ऐसी स्थिति में क्रोध व्यक्ति को कुमार्ग की ओर ले जाता है और दुर्गतियों में गिराता है। इसलिये क्रोध शराब से भी ज्यादा खतरनाक तत्त्व है।

काश ! हम इसके खतरे को पहचाने और इससे बचने का आन्तरिक उपाय करें। हम बाहर के शत्रुओं से बचने का बहुत ज्यादा ध्यान रखते हैं। लेकिन जो असली शत्रु हैं, उनकी तरफ हमारा ध्यान ही नहीं जाता। हम असली शत्रु को पहचानने की कोशिश करें। बाहर का शत्रु तो हमें कुछ धन-सम्पत्ति का नुकसान पहुंचा सकता है, स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा सकता है, हमारी प्रतिष्ठा को धूमिल कर सकता है। ये बाहर के शत्रु हैं जो हमें केवल लौकिक क्षति पहुंचाते हैं। उनसे जो कुछ भी नुकसान होता है, वह कुछ पलों का ही होता है और इहलोक के लिये ही होता है। उस क्षति को हम बहुत सहजता से पूरी भी कर सकते हैं। लेकिन भीतर के विकार आत्मा के बड़े प्रबल शत्रु हैं। इनसे जो नुकसान होता है, वह एक जन्म में नहीं, जन्म-जन्म में भोगना पड़ता है।

एक वैज्ञानिक ने क्रोध के नुकसानों के विषय में बताते हुए लिखा है - कोई व्यक्ति नौ घण्टे तक शारीरिक कठोर श्रम करने के बाद जो शारीरिक क्षति पाता है, उतनी क्षति केवल पन्द्रह मिनट के क्रोध से क्षति हो जाती है। क्योंकि, क्रोध से हमारे अन्दर आग लगती है और उस समय अनेक घातक रसायनों का स्राव हमारे अन्दर होने लगता है। जिनके प्रभाव से हमारा रक्त भी जलने लगता है। क्रोध भयानक जहर है, जहर से भी खतरनाक जहर है।

अभी कुछ दिन पहले न्यूयार्क में एक प्रयोग हुआ। लगभग तीन वर्ष पूर्व की बात है। मैंने एक अखबार में इसको पढ़ा था। क्रोध जहर कैसे होता है ? खरगोश पर प्रयोग किया गया। खरगोश को क्रोध दिलाया गया। गुस्से में खरगोश ने आदमी को काटा। और उसी गुस्से की स्थिति में खरगोश ने स्वयं को भी काँटा। तब देखा गया कि खरगोश मर गया। स्वयं को काटने पर खरगोश स्वयं मर गया। उसके अन्दर इतना जहर भर गया था। ये क्रोध के जहर का परिणाम है। यह हम सबके लिये जहर से भी खतरनाक है। जहर खाने पर आदमी एक बार मरता है, पर क्रोध का जहर चढ़ने पर आदमी न जाने कितनी बार मरता है। जो जीते जी मारे उसका नाम है क्रोध। जो हमारी चेतना को जड़ाक्रान्त बना दे उसका नाम है क्रोध। जो हमारे विचार और विवेक को भस्म कर डाले उसका नाम है क्रोध। इससे अपने आपको बचाइये। आये दिन हम ऐसे परिणामों को देखते हैं। हम कहते हैं कि जब आदमी आपे से बाहर हो जाता है तो इस बाहर होने का मतलब यह नहीं है कि हम शरीर से बाहर हो जाते हैं। आपे से बाहर का मतलब है आत्मनियन्त्रण खो बैठते हैं। हमारा अपने आप पर नियन्त्रण नहीं होता। हम क्रोध के आवेग-संवेग में इस तरह बह जाते हैं कि हमें कुछ समझ में ही नहीं आता। यह बड़ी भयंकर चूक है, इससे बचना चाहिए। इसके कभी-कभी बड़े भयंकर परिणाम देखने को मिलते हैं।

आज से करीब आठ-नौ वर्ष पूर्व की बात है। हम लोग ललितपुर में थे। ललितपुर के पास एक गाँव में बड़ी ही लोमहर्षक घटना घटी। एक आदमी था, वह नशा करता था। पत्नि से कहा-सुनी हो गयी। उसे अत्यन्त गुस्सा आया। गुस्से में उसने पहले अपनी पत्नि को कुल्हाड़ी से मारा। पत्नि की चीख को सुनकर उसके दो बेटे आ गये। एक बाईस साल का था और दूसरा सत्तरह-अठारह साल का था। बेटे ने कहा - पिता जी आप क्या कर रहे हो ? उस पर तो गुस्से का भूत सवार था। उसने बेटों पर भी घातक प्रहार किया जो उनके सिर पर लगे, जिससे दोनों के प्राण निकल गये।

जब वह बाहर की ओर आ रहा था तो सामने से उसकी बेटी आती दिखी। इकलौती बेटी थी। उसने बेटी को देखा तो उस पर भी कुल्हाड़ी का प्रहार कर दिया। इसके बाद उसने भागना चाहा। उसे भागते हुए ठोकर लग गयी, गिरा और आते हुये ट्रक ने कुचल दिया जिससे उसके भी प्राण निकल गये।

क्रोध का बैरोमीटर

यह है क्रोध का कुपरिणाम। जब तक क्रोध एक सीमा में रहता है तब तक तो फिर भी उसको समझा जा सकता है। जब नियन्त्रण से ऊपर हो उठता है, तो उसका कोई हिसाब-किताब नहीं होता। उसका कोई विश्वास और भरोसा नहीं होता। मैं समझता हूँ कि क्रोध से कमोबेश हर कोई प्रभावित होता है। पर आप देखिए कि आपका क्रोध किस दर्जे का है। शास्त्रकार कहते हैं -

उत्तमस्य क्षणं क्रोधं, मध्यमस्य घटिकाद्वयम् ।

अधमस्य अहोरात्रं, धमाधमस्य मरणान्तिकम् ॥

उत्तम पुरुष का क्रोध क्षणमात्र को होता है, मध्यम पुरुष का क्रोध दो घड़ी यानी एक मुहूर्त के लिये होता है। जो अधम पुरुष है उसका क्रोध एक दिन तक टिकता है। लेकिन जो उसने भी नीचे हैं, उनका क्रोध तो सारी जिंदगी बना रहता है।

हम देखें, हमारे क्रोध का दर्जा कैसा है? क्रोध कैसा भी हो, है खतरनाक। अग्नि तो अग्नि है, चिंगारी भी और ज्वाला भी। चिंगारी को चिंगारी समझकर कभी उपेक्षित मत कर देना। क्या भरोसा, यह चिंगारी कब ज्वाला का रूप ले ले। जो ज्वाला प्रकट होती है वह चिंगारी से ही जन्म लेती है। इसलिये जहाँ है, जैसे है, वहीं नियन्त्रित करने का प्रयत्न करना चाहिए। और देखिए हमारे अन्तरंग में क्रोध आता कैसे है? उसे नियन्त्रित कैसे किया जा सकता है।

मैं आपसे कह रहा था - क्रोध के कारण हमारे सारे सद्गुण नष्ट हो जाते हैं। हमारे जीवन की जितनी अच्छाइयाँ हैं, वे सब नष्ट हो जाती हैं। जीवन भर की साधना निष्फल हो जाती है। एक पौराणिक प्रसंग मेरे स्मरण में आ रहा है। एक गुरु-शिष्य चले जा रहे थे। अचानक गुरु के पाँवों के नीचे एक मेंढक आ गया। यद्यपि वह मेंढक मरा हुआ था। गुरु ने ध्यान नहीं दिया और पैर के नीचे वह आ गया। शिष्य बहुत समझदार था, उसने गुरु का ध्यान इस ओर खींचा। उसने कहा- गुरुदेव, आपके पैर के नीचे एक मेंढक आ गया है। आपको प्रायश्चित्त करना चाहिए। गुरु बोले - तुम्हें क्या चिन्ता? शिष्य ने सोचा बाद में बता दिया जाएगा। शाम को जब प्रतिक्रमण का समय आया तो शिष्य ने पुनः कहा - गुरुदेव, अपने को

देखकर चलना चाहिए। एक बहुत बड़ी विराधना हो गयी। आपके पैर के नीचे मेंढक आ गया, आपको प्रायश्चित्त लेना चाहिए। गुरु ने अनसुना कर दिया। शिष्य ने सोचा शायद गुरु ने सुना नहीं। इसलिये उसने जोर से कहा - गुरुदेव, आपको प्रायश्चित्त करना चाहिए, आपके पैर के नीचे मेंढक आ गया था।

अब गुरु एकदम आग-बगूला हो गये। बोले - प्रायश्चित्त लेना तू मुझे सिखायेगा। अभी बताता हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए! इतना कहते ही गुरु शिष्य के पीछे लपके। शिष्य जवान था। उसने देखा तो वह एक तरफ छिप गया। लेकिन गुरु एक खम्भे से टकरा गये। टकराने से उनका सिर फट गया और उसी क्रोधपूर्ण स्थिति में उनका मरण हो गया। मालूम मरकर है क्या हुए? चण्डकौशिक नामक सर्प, जो दृष्टिविषसर्प था। जिसका जहर भगवान् महावीर ने उतारा था।

एक मुनि क्रोध के वशीभूत होने के कारण चण्डकौशिक जैसी पर्याय को प्राप्त हुआ। जीवन भर की साधना क्षणभर के क्रोध में नष्ट हो जाती है। हम इसको समझें और अपने आपको इस प्रकार की प्रवृत्तियों से बचाने की भरसक कोशिश करें।

उत्प्रेरक कारण क्रोध के

हम देखें कि आखिर क्रोध हमें आता ही क्यों है? क्रोध आने के प्रमुख पाँच कारण हैं - १. जब हमारी स्वार्थपूर्ति में बाधा आती है या अपेक्षा की उपेक्षा होती है। २. जब कोई दुर्वचनों का प्रयोग करता है। ३. जब हमारे मन में कोई भ्रान्ति होती है। भ्रम होता है या गलतफहमी के कारण क्रोध आता है। ४. जब एक-दूसरे के बीच विचारभेद हो/रुचिभेद होते हैं। ५. कभी-कभी एक-दूसरे के प्रति पूर्वाग्रह भी क्रोध का कारण बन जाता है।

थोड़ा देखें कि इन स्थितियों में क्रोध होता कैसे है? गरमी का समय है, प्यास लगी। आपने नौकर से कहा - पानी लाओ। नौकर पानी लाया, पानी ठंडा था, आपको बड़ी प्रसन्नता हुई, अच्छा पानी लाया। थोड़ी देर बाद आपको फिर से प्यास लगी। नौकर से कहा - पानी लाओ। नौकर पानी लेकर आया, इस बार पानी अपेक्षाकृत कम ठंडा था। अब कहते हैं - पानी लाये हो या आग। ऐसा पानी लाया

जाता है ? पानी कम गरम था आप अधिक गरम हो गये । क्योंकि आपकी जो अपेक्षा थी उसकी पूर्ति नहीं हो सकी ।

फिर प्यास लगी, आपने फिर से पानी मँगाया । नौकर ने अनसुना कर दिया या उसे आने में विलम्ब हो गया । कुछ देर से नौकर आया । और अब की बार जो पानी था वह एकदम गरम था । पानी तो पानी रहा और आप आग बन गये । नौकर पर एकदम से बरस पड़े । ये कोई बात होती है । ऐसा पानी लाया जाता है ? अब क्या हुआ ? हमने जैसा चाहा था वैसा नहीं हुआ । यह क्रोध की उत्पत्ति का कारण है ।

पिता ने सोच रखा था कि बेटा अच्छे अंकों से पास होगा । रिजल्ट आया तो पिता की अपेक्षा के अनुकूल अंक नहीं आये । पिता को गरम होने के लिये यह पर्याप्त कारण है । गरम हो गए - साल भर की पढ़ाई तुमने चौपट कर दी । यह बात और है कि जब वह खुद पढ़ते थे तो शायद इतने भी अंक नहीं आये हों । लेकिन आज बेटे से अपेक्षा जरूर करते हैं । पति दफ्तर से आया, टेबिल पर मार्कसीट रखी थी, उसे देखते ही कहा - हद हो गयी । पूरा साल बर्बाद कर दिया, गणित में सत्तरह नम्बर, अंग्रेजी में तेरह नम्बर, हिन्दी में अठारह नम्बर, विज्ञान में सात नम्बर । क्या होता है यह कोई रिजल्ट है ? पूरा साल बर्बाद कर दिया । समझ में ही नहीं आता । पत्नी ने पूछा - क्या बात है, क्यों बड़बड़ा रहे हो ? पत्नी सामने आयी तो पत्नी पर अब बरसा । कैसे बच्चे हैं, इनको सब प्रकार सुविधायें दो फिर कोई लाभ नहीं । और के दूसरे लोग देख भी नहीं सकते कि घर में क्या हो रहा है, क्या नहीं ? आदि। जब हमारी अपेक्षाएँ बढ़ती है तो उसका नतीजा कुछ ऐसा ही होता है तात्पर्य क्रोध आता है ।

बेटे की शादी की । मन में था कि बहुत सारा दहेज मिलेगा । बहु दहेज लेकर आयेगी । दहेज का सामान देखा तो लगा इसने तो कुछ दिया ही नहीं । हमने तो सोचा था कि करोड़पति है । ये तो कंगाल की संतान निकला । हम तो ठगा गये । कुछ मिला ही नहीं । आजकल जो लेन-देन होता है वह व्यापार ही होता है । अभी तक जो बहू लक्ष्मी दिख रही थी, अपेक्षा के अनुरूप न होने के कारण उसी में उसे चुड़ैल का रूप दिखने लगा । अब वह उसे अमंगल दिखने लगी । तानाकसी शुरू हो

गयी । व्यंग-बाण शुरू हो गये । उसकी उपेक्षा की शुरूआत हो गयी । बात-बात में झल्लाहट की शुरूआत हो गयी । आखिर ये सब बातें क्यों ? जहाँ अपेक्षा की उपेक्षा होती है, वहाँ मन में क्रोध आता है ।

दूसरा हेतु, किसी ने हमें कुछ अपशब्द कह दिये, दुर्वचन कह दिये या अनुचित व्यवहार हमारे प्रति हुआ तो हमारे मन में क्रोध उत्पन्न हो जाता है कि अच्छा, तुमने ऐसा कह दिया । एक शब्द पर्याप्त है । शब्द में बहुत बड़ी ताकत है । एक शब्द से हम सबके चित्त को हर लेते हैं और एक शब्द ऐसा होता है जिससे हम सबको द्वेषी बना देते हैं । शब्द है, जिससे कि लोगों का दिल बाग-बाग हो जाए और शब्द है कि जिससे लोगों के दिल में आग लग जाय । एक शब्द से हमें प्रसन्नता आ जाती है और एक शब्द से हमें खिन्नता आ जाती है । यह सारा खेल शब्द का है । किसी ने यदि कोई कटु शब्द हमसे कह दिये तो हमारे लिये पर्याप्त है, वे शब्द कान से जाते हैं और चित्त को मथ डालते हैं ।

जैसे शान्त सरोवर में हम कंकड़ फेंकते हैं तो वलय-दर-वलय अनेक वलय उत्पन्न होते हैं । वैसे ही दूसरों के द्वारा सुने गये एक शब्द की प्रतिक्रिया हमारे अन्तरंग में ऐसी होती है, जो हमें ऊपर से नीचे तक हिला डालती है । यह दुर्वचन का भाव है ।

संत कहते हैं - दुर्वचन से अपने आपको बचाओ । दूसरे यदि ऐसा कहते हैं तो उनसे अपने आपको अप्रभावित रखने की कोशिश करो । तब आप शान्त रह सकोगे । प्रतिक्रिया करो मत और प्रतिक्रिया सहो मत, अपने आप सारा काम हो जायेगा । न किसी की प्रतिक्रिया करना और न किसी से प्रतिक्रिया कराना, इनसे बचते रहिये ।

दुर्वचन हमारे अन्तरंग में क्रोधोत्पत्ति का कारण है । जो व्यक्ति दुर्वचन का व्यवहार करते हैं, वे कभी किसी के प्रिय नहीं होते । किसी से प्रेम नहीं पा सकते । ऐसे व्यक्ति कभी सफल नहीं होते । मैं तो कहता हूँ कि -

जिसके मुख में मिठास, उसका हर दिल में निवास ।

जिसके मुख में खटास, उसका बैरी सारा समाज ॥

मुख में खटास होगी तो सबमें खटास आ जायेगी। मुख में मिठास है तो हर दिल में निवास होगा।

आप लोगों के दिल में बैठना चाहते हैं तो मुख में माधुर्य भरें। कटुवचन, कटूक्ति से अपने आपको बचायें। दूसरों की कटूक्तियों को झेलने की सामर्थ्य बनायें। आप क्रोध को जीत सकते हैं।

किसी का अनुचित व्यवहार यदि हमारे साथ होता है, विरुद्ध व्यवहार होता है तो हम तिलमिला जाते हैं, हम सह नहीं पाते। ये हमारी एक प्रकार की मानसिक कमजोरियाँ हैं। जो महान आत्माएँ होती हैं, वे सब इन सब बातों को सहजतया जीत लेते हैं। उनके ऊपर इन सब बातों का किंचित् भी असर नहीं पड़ता। वे तटस्थ बने रहते हैं। उनके अन्दर इस तरह के आवेश-संवेग उत्पन्न नहीं होते। और यदि उत्पन्न होते भी हैं, तो उनसे प्रभावित नहीं होते।

दुर्वचन कहे द्रौपदी ने, दुर्योधन के चित्त में आग लग गयी, महाभारत मच गया। ये दुर्वचन का प्रभाव था। थोड़ा-सा दुर्वचन कहा महाभारत मच गया। शराब के नशे में मत्त होकर यादवकुमारों ने मुनि के प्रति अनुचित व्यवहार किया। द्वैपायन मुनिराज तैजसक्षमता के धारी थे, शुक्ललेश्या के धारी थे, उन्होंने देवों के अनुत्तर विमानों की उत्कृष्ट आयु, जो सर्वोत्कृष्ट होती है, उसका बन्ध कर रखा था, ऐसे महामुनि थे। लेकिन यादवकुमारों के अनुचित व्यवहार के आगे अपने आपको सम्हाल नहीं सके। उनके अन्दर क्रोध की अग्नि उत्पन्न हुई। सारी तपस्या की ताकत भस्म हो गयी। एक पल में भस्म हो गयी। यदि उन्होंने अपने आपको सम्हाल लिया होता तो उनका अनुचित व्यवहार उन्हें केवलज्ञान प्राप्त करा सकता था।

एक व्यक्ति है, जो दूसरों के उपद्रव से अन्तर्मुख हो, उनसे अप्रभावित होकर कैवल्य को प्राप्त कर लेता है और एक व्यक्ति है जो दूसरों से प्रभावित होकर अपने लिये नरक का रास्ता खोल लेता है। यदि हम पर के निमित्त से प्रभावित होकर अपने अन्दर विकार को जन्म देते हैं तो समझ लें नरक का मार्ग प्रशस्त करते हैं। और यदि पर के निमित्त आने पर भी अप्रभावित रहते हैं तो मान लो मोक्ष का द्वार खोल लेते हैं।

दोनों स्थितियाँ हमारे ऊपर हैं, करना हमें ही पड़ेगा। दूसरा इसमें सहभागी नहीं बन सकता। क्योंकि इसके जिम्मेदार हम स्वयं हैं और उसका सारा उत्तरदायित्व स्वयं हमारे ऊपर है, किसी गैर के ऊपर नहीं। इसलिये इस तरफ हमारा ध्यान होना चाहिए।

बन्धुओ, एक साधारण व्यक्ति और एक साधक पुरुष में अन्तर है तो कुल इतना ही है, कि साधारण व्यक्ति अपने चित्त में उत्पन्न होने वाले संवेगों के बहाव में बह जाते हैं और जो साधक हैं उनमें ठहराव बना रहता है। वे केवल उनके द्रष्टा बने रहते हैं, उनमें बहते नहीं। क्रोध के बहाव को अपने ऊपर बहने देना और क्रोध के बहाव में बह जाना, दोनों में बहुत अन्तर है। यदि आपके अन्दर धैर्य है, आपके अन्दर सहिष्णुता है, आपके अन्दर समता है तो कितने भी बड़े-बड़े कारण क्यों न आ जाये, बाहर के निमित्त आपको प्रभावित नहीं कर सकेंगे। या जितने कारण मैं आपको क्रोधोत्पत्ति के बता रहा हूँ, ये उनके अन्दर क्रोध उत्पन्न करते हैं जिनके चित्त में दुर्बलता होती है, जिनकी दृष्टि निमित्ताधीन होती है। ध्यान रखना, जब तक हमारा चित्त निमित्तों से प्रभावित होता रहेगा, हम अपने मन को शान्त और सुखी नहीं बना सकते। शान्त और सुखी वे होते हैं जो निमित्तों से अप्रभावित होते हैं। और निमित्त उन्हें ही प्रभावित करते हैं, जो कमजोर होते हैं। हवा पानी में लहर उत्पन्न कर सकती है पर पत्थर में नहीं। पत्थर में लहर उत्पन्न करने की क्षमता आज तक हवा में प्रकट नहीं हुई। निमित्त से यदि हमारे अन्दर हलचल आती है तो उसमें दोष निमित्त का कम हमारा अपना ज्यादा है। क्योंकि हम प्रभावित हो जाते हैं। अनुचित व्यवहार को समता से सहन करें। हम उस पर ध्यान ही नहीं दे पाते।

एक है विचारभेद। हमारे विचार के विरुद्ध कुछ हुआ, हमारे चिन्तन के विरुद्ध कुछ हुआ तो हम सहन ही नहीं कर पाते। अपितु एकदम से भड़क उठते हैं, यह हमारी एक प्रकार की दुर्बलता है। विचारों के मध्य सामंजस्य केवल वे ही स्थापित कर पाते हैं जो सहिष्णुता का अभ्यास करते हैं।

जब हम अपनी ही बात को सही मानते हैं और सामने वालों की बातों को

गलत मानना शुरू कर देते हैं, तो हमारे अन्दर असहिष्णुता का जन्म हो जाता है। वही से हमारे बीच संघर्ष होना शुरू हो जाता है। आज देखिये, पिता और पुत्र के बीच सामंजस्य का अभाव है। भाई और भाई के मध्य खाई है। पति और पत्नि के बीच भी दूरियाँ हैं। घर-परिवार में जितने सदस्य रह रहे हैं उनमें सामंजस्य नहीं है। आखिर क्यों? हम विचारों का तालमेल नहीं जानते। हम अपने ही विचारों में अड़े रहने के अभ्यासी हो गये हैं। दूसरों के साथ जैसा सामंजस्य बनाना चाहिए, उसमें हम सफल नहीं हो पा रहे हैं। यह हमारी बहुत बड़ी कमी है।

ऐसे देखा जाय तो आज का मनुष्य बहुत अधिक समृद्ध हो गया है। सक्षम भी हो गया है। बाह्य दृष्टि से देखा जाय तो मनुष्य की बाह्य शक्तियाँ दिनोदिन विस्तीर्ण होती जा रही हैं, लेकिन वह खुद शक्तिहीन होता जा रहा है। बाहर से तो ताकत बढ़ रही है लेकिन भीतर से हम क्षीण होते जा रहे हैं। क्योंकि हमारे भीतर जो जीवन का मूलतत्त्व है वह क्षीण होता जा रहा है। आज बहुत जरूरत है वैचारिक सहिष्णुता की। हम अनेकान्त के अनुयायी हैं, लेकिन हमारा सारा सोच शास्त्रों के पन्नों तक सीमित रह गया है। जीवन व्यवहार में जैसा उसे उतारना चाहिए, हम नहीं उतार पाते।

अनेकान्त का व्यावहारिक अर्थ यही है वैचारिक सहिष्णुता को प्राप्त करना। अपने विचारों में दृढ़ रहते हुए भी दूसरों के विचारों का आदर करना। मैं ही सही नहीं, तुम भी सही हो। मैं अपनी जगह सही हूँ और तुम अपनी जगह सही हो। जब तक हमारे विचारों के अनुरूप काम होता है हम प्रसन्न बने रहते हैं। जहाँ हमारे विचारों से थोड़ा उतरता है कि हममें आग लग जाती है। यह हमारी कमी है।

गाँधी जी ने एक जगह बहुत अच्छी बात लिखी है - अब मैं अपने विरोधियों को भी मित्र मानने लगा हूँ। क्योंकि मुझमें अपने विरोधियों की दृष्टि प्रकट हो गयी। मैं विरोधियों को विरोधियों की ही दृष्टि से देखता हूँ। बात सही है। मैं जब तक अपनी दृष्टि से देखूँगा तो मुझे वही दिखाई देगा, जैसा मैं सोचता हूँ। जिस पल मैं आपकी दृष्टि से सोचने लगूँगा तो मुझे वह भी दिखाई देगा जो आप सोचते हैं। यह तभी संभव है, जब हमारे अन्दर वैचारिक सहिष्णुता जन्म लेगी।

जिस मनुष्य के अन्तरंग में यह बात घटित हो जाती है उसके जीवन में कभी संघर्ष नहीं होता। अपने चित्त की अशान्ति को, अपने चित्त की उद्विग्नता को नष्ट करना है तो हमें खुद पहल करनी पड़ेगी। ये क्रोध के कारण हैं, इनसे अपने को बचाइये। यह तब संभव होगा, जब आपकी चेतना में अध्यात्म की प्रतिष्ठा होगी। या यूँ कहें कि जब आपका आध्यात्मिक जागरण होगा तब ये सारे विकार अपने आप शमित होने लगेंगे।

बन्धुओ, अध्यात्म कोई साधारण बात नहीं है। अध्यात्म एक बहुत बड़े युद्ध का आह्वान है। वह युद्ध है अपने विकारों के प्रति। अपनी दुर्बलताओं को जीतने के अनुष्ठान का नाम है अध्यात्म। हम उनकी तरफ दृष्टि दौड़ायेँ और निरन्तर उनको दूर करने का प्रयत्न और पुरुषार्थ करें। तभी हम इनसे बहुत जल्दी मुक्ति पा सकते हैं। यदि हम इनके मूकदर्शक बने रहे तो हमारे जीवन का कभी भी कल्याण नहीं हो सकता। थोड़ी-थोड़ी-सी स्थितियों में हमारी बहुत भयंकर स्थिति हो जाती है। हमारे पुराणों में अनेकों ऐसे उदाहरण देखने को मिलते हैं। जीवन व्यवहार में भी हम अनेक उदाहरण देखते हैं, जो इस तरह के निमित्तों से प्रभावित होते हैं, उनकी जीवन की स्थिति कितनी खतरनाक हो जाती है।

भ्रम भी क्रोधोत्पत्ति का बहुत बड़ा कारण है। गलतफहमी के कारण आजकल एक-दूसरे के प्रति बहुत ज्यादा वैमनस्य हो जाता है। क्रोध आ जाता है। हम सोचते कुछ हैं और सामने वाला करता कुछ है। हमारे पास रिपोर्ट कुछ आती है और हममें आग लग जाती है। यह सब क्यों होता है? कम्युनिकेशन गैप के कारण। यद्यपि आज हम संचार क्रान्ति के युग में जी रहे हैं, पर देखिए घर-परिवार के सदस्यों के बीच आज कितना अधिक कम्युनिकेशन गैप बढ़ता जा रहा है। संवादहीनता कितनी बढ़ रही है? मैं आपसे कहता हूँ कि यदि कोई अमुक आदमी आपके बारे में यह कह रहा था तो उसके बारे में आप सामने वाले की बाद में सुनो। आप तो सीधे उस व्यक्ति के पास चले जाओ और पूछ लो कि आपने हमारे बारे में ऐसा कुछ कहा है क्या? नहीं कहा। तो अपने आपको निश्चिन्त कर लो। आप शान्ति पाओगे। लेकिन हम करते क्या हैं? कि आपके विषय में वह व्यक्ति ऐसा-ऐसा कह रहा था, वह हमारे सामने तो बड़ी मीठी-मीठी बातें करता है। अब देख लेंगे उसको।

उसने कहा है कि नहीं कहा यह तो बाद की बात है, पर उसके एक वाक्य को सुनते ही हमारे अन्दर आग लग गयी। हमने अपने अन्दर ही जोड़-घटाना शुरू कर दिया। अब हम उसको कैसे सबक सिखलायेंगे, अब हम उसको कैसे अपने रास्ते से अलग करेंगे ? उसको कैसे नीचा दिखायेंगे ? सारा गणित हमने एक पल बैठा लिया। यह भी हमारी एक बहुत बड़ी कमजोरी है।

गलतफहमी में कभी-कभी बहुत घातक परिणाम आ जाते हैं। इसलिये इनसे बचना चाहिए। लेकिन आज का आदमी कान का कच्चा हो गया है। कान के कच्चे होने का मतलब जानते हैं क्या होता है ? किसी ने किसी से कहा कि देखो, तुम्हारा कान कौआ ले गया। वह कहता है - क्या ? हाँ, कौआ ले गया। तो वह कौए की तरफ लपकता है। अरे भाई, पहले कान को देखो, कि कान ले भी गया है या नहीं। कान जब तक तुम्हारे चेहरे पर लगा है, तो कौआ उसे कैसे ले जा सकता है ? लेकिन दुनियाँ में ऐसे लोगों की भरमार है, जो कौए की तरफ तो लपकते हैं, अपने कान की तरफ झाँकने का प्रयास नहीं करते। ऐसे लोग न कभी स्वयं शान्त रहते हैं और न दूसरों को शान्त कर सकते हैं। यह गलतफहमी एक बहुत खतरनाक कारण है।

पति अपनी पत्नि को छोड़कर विदेश गया। पन्द्रह वर्ष तक उसने धन कमाया। उसके बाद उसे घर की याद आयी। सोचा अब घर चला जाय, बिना सूचना के। वह अपनी पत्नि को सरप्राइज देना चाहता था। वह अचानक घर आ गया। रात्रि में जब वह घर पहुँचा तो देखता क्या है कि उसकी पत्नि सोलह वर्ष के युवक के साथ लेटी हुई है। पति के मन में आग लग गयी। मैं तो इसके लिये इतना धन कमाता था और यह है कि इस स्थिति में है। उसके अन्दर क्रोध उमड़ पड़ा। उसने तलवार खींच ली। अभी मैं दोनों की गर्दनों को धड से अलग करता हूँ। अचानक ही शयनकक्ष में अपने द्वारा लगायी गयी पट्टिका पर नजर गयी। जिसमें लिखा था - **सहसा न विदधीत् कार्यम्**। कोई भी कार्य जल्दबाजी में न करें। वह रुक गया। उसे सहसा एक संदेश मिल गया। उसने अपनी तलवार को अपनी म्यान में रखा। उसने पत्नि को जगाया। पत्नि ने जैसे ही पति को देखा, उसने अपने बगल

में लेटे हुए युवक को जगाते हुए कहा - देख, तेरे पिताजी आ गये, इनका चरणस्पर्श कर।

पति हक्काबक्का रह गया। पति बोला - यह कौन ? पत्नि ने कहा - आप भूल गये क्या ? यह वही एक साल का बेटा है, जिसे आप मेरे पास छोड़ गये थे। वही मेरे पास लेटा था।

यदि थोड़ी हड़बड़ी हो जाती, जल्दबाजी हो जाती तो क्या होता। अपनी पत्नि को भी खो देता और बेटे को भी। आप देखिए, आपके साथ जो झगड़े होते हैं, उनमें हड़बड़ी के कारण अधिक होते हैं, गलतफहमी के कारण अधिक होते हैं। बेसिर-पैर की बातें ज्यादा होती हैं। जिनका कोई मतलब ही नहीं, इसको हम क्या कहें ? निरी मूर्खता है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। फिजूल की बातों में अपने को उलझाना, मूर्खता की पहचान है। ऐसी बातों में अपने को कभी शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

हैं उपाय इनसे बचने के

संत कहते हैं - ऐसी मूर्खता से बाज आइये और अपने जीवन को पवित्र बनाने का प्रयत्न कीजिये। ये क्रोध के कारण हैं। अब बात है क्रोध से बचने की। क्रोध से बचा कैसे जाय ? कारण तो हर कोई गिना देता है, पर बचने का उपाय बताइये महाराज ! सबसे बड़ी समस्या यह है कि बीमारी सब बताते हैं, पर दवाई कोई नहीं देता। संत कहते हैं - दवाई है और बहुत सरल दवाई है, उसके लिये ज्यादा कुछ करने की जरूरत नहीं है। ऐसे कई उपाय बताये गये हैं क्रोध से बचने के लिये।

सबसे पहले तो यह कि, जहाँ आपको क्रोध आये, आप उस स्थान से हटिये। जैसा कि लोग कहते हैं कि जब क्रोध आता है तो इतना विवेक ही नहीं रहता कि हम उस स्थान से हट सकें। दूसरा उपाय है, यदि क्रोध आये तो मौन हो जायें। मौन हो जायें तो क्रोध कैसे आये, यह भी हम नहीं कर पाते। तीसरा उपाय है, जिस समय क्रोध आये, उस समय आप अपने कार्य की दिशा बदल दें। भिन्न कार्य को करने लग जायें। महाराज उस समय होश ही नहीं रहता, तो हम क्या करें ? चिन्तन

की दिशा को बदल दें ! वह भी हमारे वश का नहीं होता । भगवान् का नाम स्मरण करें । वह भी संभव नहीं होता । बड़ी मुश्किल है, जब आप कुछ नहीं कर सकते तो हम भी क्या करें ?

घबराइये नहीं, आपको आज एक-दो प्रेक्टिकल उपाय आपको बतला रहा हूँ, जिनको यदि आप अपनायेंगे तो आप क्रोध जैसी अनेक दुर्बलताओं पर विजय पा सकते हैं । दरअसल है क्या ? इसे समझें । क्रोध आदि की जो बीमारियाँ हैं, उनके संस्कार इतने गहरे हो गये हैं कि हम उनमें रच-पच गये हैं । अब हम जानबूझकर क्रोध कम करते हैं, अनजाने में अधिक करते हैं ।

दो तरह के विकार होते हैं - एक हम बुद्धिपूर्वक करते हैं और दूसरे अबुद्धिपूर्वक करते हैं । जो विकार हम बुद्धिपूर्वक अर्थात् सोच-समझकर करते हैं, उसको हम बहुत जल्दी कंट्रोल कर सकते हैं । लेकिन जो संस्कार ऐसे हो गये हैं कि बिना सोचे ही हो जाते हैं, हमें पता ही नहीं लगता कि हम क्रोध कब कर बैठे ! हमें पता नहीं लगता कि मुख से गाली निकाल चुके हैं । हमें पता ही नहीं चलता कि हम कब अपशब्द निकाल चुके । ये सब अबुद्धिपूर्वक होने वाले विकार हैं । इनको जीतने के लिये आपको कुछ उपाय करने पड़ेंगे । सबसे पहले तो यह कि आप अपने मन में संकल्प लीजिए कि क्रोध मेरे जीवन का प्रबल शत्रु है, मुझे इससे मुक्ति पानी है । मुझे इस पर नियन्त्रण करना है । यह मन में संकल्प लीजिए ।

दूसरा, जब आपको यह लगे कि मैंने क्रोध कर लिया, तो क्रोध के बाद स्वयं को दण्डित कीजिए । अपनी निन्दा, आलोचना कीजिए । मैंने गलत किया, मैंने शत्रु को शरण दी । हमने शत्रु को अपनाया, वह मेरे लिये हानिकारक है, यह कीजिए ।

तीसरा उपाय मैं आपको बता रहा हूँ कि आप घर में कुछ स्लोगन्स बनाकर, पट्टिका में लिख कर लगाइये । क्रोध मेरा प्रबल शत्रु है । क्रोध अस्थायी पागलपन है । मुझे क्रोध से मुक्ति पाना है । क्रोध मेरे सुखों को भस्म करने वाला है, क्रोध मेरी शान्ति को छीनने वाला है । इस आशय के एक-दो वाक्य आप लिखकर ऐसी जगह लगाइये कि जहाँ से आपको बीस बार गुजरना हो । जब भी आप जाओगे, आप उसे

देखेंगे तो वह आपको सावधान करेगा । इससे आपके सब्कान्सेस में जो संस्कार पड़े हैं, उनसे विरोधी संस्कार पड़ेंगे । और आप उनको जीत सकेंगे ।

एक और पद्धति है, वह है आटोसजेशन की । सुबह से उठ जाइये, घर की छत या किसी एकान्त स्थान पर चले जाइये । आसन लगाकर बैठिये, आजकल योग और प्राणायाम का बहुत चलन है । वह सब तो आप करते ही हैं । यह सब करने के बाद आप क्रोध आदि से होने वाले नुकसान और क्षमादि से होने वाले गुणों को बताने वाले वाक्य बनाइये । उनका पचास बार दीर्घ उच्चारण कीजिए । जैसे क्रोऽऽऽऽऽध एऽऽऽऽऽक अस्थायी पाऽऽगलपन है । आप इसे पचास बार कहिए । यह पागलपन छूट जायेगा ।

यह प्रेक्टिकल चीजें हैं । यदि हकीकत में आप इस बीमारी से मुक्ति पाना चाहते हैं तो इस प्रकार के उच्चारण करना चाहिए । इस उच्चारण की दीर्घ अनुगूँज आपके चित्त में पड़ेगी और जब कभी भी क्रोधात्मक स्थिति आयेगी, तो यह गूँज आपके मस्तिष्क में होगी । अरे, क्रोध एक अस्थायी पागलपन है, क्रोध मेरा एक प्रबल शत्रु है । क्रोध सुख को भस्म करने वाला है । क्रोध गुणों का विनाशक है । इनमें से कोई एक वाक्य आपके मस्तिष्क में आयेगा तो अबुद्धिपूर्वक जो क्रोध आप करते हैं, उस पर नियन्त्रण पाने में आप सफल हो जाओगे । आप उसको जीत सकोगे । ये उपाय हैं ।

एक बात ध्यान रखना, बिना प्रयास के कुछ भी नहीं होता । एक छोटी-सी बीमारी बिना गोली खाये नहीं जाती । फिर यह तो जन्म-जन्म की बीमारी है, अपने आप चली जायेगी, यह संभव नहीं । आप सोचो कि महाराज के पास चलें और वे आशीर्वाद दे दें तो मेरा क्रोध समाप्त हो जाये । यह संभव नहीं है । महाराज के पास ऐसी कोई जादुई छड़ी होती तो मैं एक साथ सब पर घुमाता और सारे संसार में शान्ति हो जाती ।

पहले तौलें आप स्वयं को

आपको अपने विचारों को परिवर्तित करना है, आपको अपने अन्दर वैसे संस्कार डालना है । धीरे-धीरे आप इनसे मुक्ति पा जाओगे । मेरे सम्पर्क में ऐसे कई

लोग हैं, जो प्रचण्ड स्वभावी थे, आज एकदम शान्त हो गये हैं। मनुष्य के लिये असंभव कुछ नहीं है। यदि अपने मन को शान्त रखना चाहते हैं। बार-बार की खीझ, झुँझलाहट, चिड़चिड़ापन अथवा आवेश से अपने आपको बचाना चाहते हैं तो इस तरह के कुछ प्रयोग कीजिए। ये प्रयोग हमारे आचार्यों ने बताये हैं। इनको जब हम धीरे-धीरे प्रयोग में लाते हैं तो सारे विकारों को जीतने में भी सक्षम हो सकते हैं। यदि उनको हम ध्यान में नहीं रखते हैं तो उन पर विजय पाना कभी भी संभव नहीं होगा। इसलिये इनको आप देखिए।

एक प्रश्नावली मैं आपको दे रहा हूँ - अगर आप क्रोध को देखना चाहे। हमारे साथ एक विडम्बना है, यदि आपका ब्लडप्रेसर कुछ ऊँचा-नीचा होता है तो उसको नापने के लिये एक मशीन है। शुगर बढ़ जाती है तो उसको भी नापने की मशीन है। हाथ में कोई प्रावलम आ रही है तो उसको भी नापने की मशीन है। लेकिन आपके अन्दर क्रोध कितना बढ़ रहा या घट रहा है, इसको नापने की मशीन है क्या? अभी तक तो कोई मशीन नहीं बनी। घबराइये नहीं, मैं आपको मार्गदर्शन दे रहा हूँ, आप उसे ध्यान पूर्वक सुनियेगा। रोज इन प्रश्नों को अपने मन से पूछियेगा। क्रोध है, उसे जीतने के लिये सतत् प्रयास करना होगा।

जैसे विषाणुयुक्त पानी या विकृत पानी होता है तो उसे उबाल दिया जाता है। जिससे उसके विषाणु नष्ट हो जाते हैं। जब आपके अन्दर क्रोध आये तो क्रोध भी ज़हर है, उसको उबाल दो। अब इसका ज़हर नहीं चढ़ेगा। क्रोध के प्रति एक जागृति और पश्चात्ताप का भाव हो, परिताप का भाव हो, हानियों को अपने सामने रखकर चलें तो बहुत सारे काम हो जायेंगे। क्रोध रूपी विष जीवन में है या नहीं? है, तो कितनी डिग्री का? क्रोध के नियन्त्रण के प्रति हमारी रुचि है या नहीं? इनके नाप-तौल के लिये कुछ उपस्थित करता हूँ जिनका उत्तर आपको स्वयं ही हाँ या न में देना है। यदि रोज-रोज़ आप इनको विचारेंगे तो अपने मन के क्रोध की स्थिति को भाँप सकेंगे। साथ ही उनकी मुक्ति का सार्थक प्रयत्न करने में समर्थ होंगे। इन प्रश्नों को आपको अपने से पूछना है।

आपको क्रोध आता है या नहीं? कुछ लोग ऐसे होते हैं जो बात-बात में भड़कते हैं और कुछ लोग भोले-भंडारी बने रहते हैं। उनको गुस्सा नहीं आता। जिनको गुस्सा नहीं आता, उनकी तो कोई बात नहीं। अगर आपको आता है तो तीव्र आता है या मन्द? किसी का गुस्सा तीव्र होता है, किसी का थोड़े में शान्त हो जाता है। आप अपने मन से पूछिये, आप किस श्रेणी के व्यक्ति हैं, आपको स्वयं पता लग जायेगा।

आपको क्रोध सकारण आता है या अकारण? कई तरह के लोग होते हैं। कुछ लोग होते हैं जो वाद्य बजने पर नाचते हैं, कुछ ऐसे भी होते हैं जो बिना वाद्य के नाचते रहते हैं। सकारण आता है या निष्कारण? सकारण आता है तो कौन-सा कारण है? किस कारण से क्रोध आता है, आपके मन के अनुकूल या आज्ञानुसार कोई कार्य न हुआ हो, इसलिये क्रोध आता है। किसी व्यक्ति से आपने अपेक्षा रखी कि वह आपके अनुसार या आपकी आज्ञानुसार कार्य करे और उसने नहीं किया, इसलिये आपको क्रोध आया।

अथवा किसी व्यक्ति ने आपको धन, जन या किसी अन्य बात की क्षति पहुँचाई हो, इस कारण आपको क्रोध आया। किसी ने आपका अपकार किया, इस कारण आपको क्रोध आया। किसी ने आपके अहंकार पर चोट पहुँचाई, इस कारण आपको क्रोध आया। किसी के दुर्वचन के कारण आपको क्रोध आता है। आपकी स्वार्थपूर्ति में बाधा पहुँची, इस कारण क्रोध आया। किसी के अनुचित व्यवहार के कारण आपको क्रोध आता है। या किसी गलतफहमी के शिकार होने के कारण आपको क्रोध आता है। या आपको विचारों में टकराव होने के कारण क्रोध आता है। आप विचार कीजिए, कि मेरे क्रोध का कारण क्या है? यह आपको सोचना है, और जैसा कारण होगा वैसा निदान करना होगा।

क्रोध का जो भी कारण बना हो, क्या आपने उसके निवारण का कोई उपाय किया? यदि नियन्त्रण किया तो क्रोध का उपाय संभव है, यदि नहीं किया तो संभव कैसे? क्रोध प्रतिदिन आता है या कभी-कभी? किन्हीं-किन्हीं को अकसर क्रोध आता है, किन्हीं-किन्हीं को कभी-कभी आता है। आप देखिए, किस तरह की

स्थिति है। एक दिन में एक बार क्रोध आता है या अनेक बार ? कुछ की स्थिति यह होती है कि बर-हमेश नाक फूली ही रहती है। क्रोध आने पर तत्काल शान्त हो जाता है या लम्बे समय तक गाँठ बनी रहती है ? किसी को जल की लकीर की तरह होता है कि हुआ और शान्त हो गया। और किसी को हुआ और शान्त ही नहीं होता। बैर की गाँठ बन जाती है, प्रतिशोध की ज्वाला में वे जलते रहते हैं।

बाद में अपने किये क्रोध पर पश्चाताप होता है या नहीं ? आपने क्रोध किया तो बाद में आपको पश्चाताप हुआ या नहीं ? विचार कीजिए। क्रोध पर नियन्त्रण न कर पाने पर किसी से प्रायश्चित्त लेने की इच्छा हुई कि नहीं ? यदि प्रायश्चित्त लेने की इच्छा हो रही है तो जागरूकता है। इच्छा नहीं हो रही है तो सुधार में अभी हम बहुत पीछे हैं।

जब क्रोध आता है तो क्या वह भीतर-ही-भीतर सीमित रहता है या जुबान पर आ जाता है। गाली या अपशब्द भी बोलने को तत्पर हो जाते हैं। हाथापाई के रूप में आता है या मारपीट के रूप में ? आप देखिए किस स्तर का क्रोध है ? किसी का क्रोध भीतर ही रहता है और किसी का विस्फोट कर जाता है। ... आपमें वह क्षमता है कि न केवल आप क्रोध पर नियन्त्रण कर सकते हैं अपितु उसे जीत भी सकते हैं। आपके अन्दर की पूरी क्षमता यदि प्रकट हो जाय तो एक क्षण में, एक मुहूर्त मात्र में क्रोध व क्रोध जैसे अन्य कर्मों के नष्ट कर सकते हैं। आप भी इन विकारों को जीत कर जीवन में अननुभूत उपलब्धि को प्राप्त करें। इसी भावना के साथ अब मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

०४-४-२००६ चौरंगी

करें मान का मर्दन

एसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ॥

झूठी शान गिरावे मान

हमारे मन के, अन्तर्मन के विकारों में दूसरा प्रमुख विकार है अहम्। इसलिए मैं कहता हूँ - अहम् हमारे जीव की बहुत बड़ी दुर्बलता या सबसे बड़ा शत्रु है। जब हमारे अहंकार को चोट पहुँचती है तो क्रोध उभर आता है। आज हम विशेष बात करें तो हम देखेंगे कि जीवन में अधिकतम दुःख है, क्योंकि हममें अहम् है। यह कहाँ से पनपता है और हमारे जीव के आन्तरिक स्वभाव को कैसे प्रभावित करता है ? क्या है अहम् ? अपने आपको उच्च और दूसरों को तुच्छ प्रदर्शित करने की चाह का नाम है अहम्। जिसका जीवन अहम् से प्रभावित होता है, उसकी कोशिश इसी प्रकार की होती है।

अभिमान के साथ उदारता भी प्रदर्शित हो सकती है। ऐसे व्यक्तियों का जीवन उथली नदी के समान होता है। जिससे उनके जीवन में अशान्ति बनी रहती है। किन्तु जिनका जीवन गम्भीर होता है उसका जीवन उतना ही विनम्र व शान्त होता है।

वस्तुतः जिनके जीवन में गहराई होती है, उनके जीवन में गुणों की गहराई का पता नहीं लगा पाते हैं। वे विकारों से अप्रभावित रहते हैं। उनमें ठहराव होता है।

जिनके जीवन में उथलापन होता है, उनके चित्त विकारों से ग्रसित एवं चंचल होते हैं। अस्थिर होते हैं। तय है हमारा मन जितना विकारों से सहित रहता है उतना ही वह प्रभावित होता है, अशान्त रहता है। यदि मन से विकार विमुक्त हो जाते हैं तो वस्तुतः मन अशान्त नहीं होगा। हमारे मन की शान्ति या अशान्ति दूसरों

पर निर्भर नहीं करती, विकारों से प्रभावित होने या न होने से ही हमारे मन में शान्ति या अशान्ति का आविर्भाव होता है। और इन विकारों में प्रमुख है अहम् चिन्तन। हमारा सोच या चिन्तन सतत् अहम् की पूर्ति में ही उलझा रहता है। और एक प्रकार से कृत्रिम जीवन का अभ्यासी हो जाता है। हम होते कुछ हैं, और दिखलाने की कोशिश कुछ और ही करते हैं। यह बात अलग है कि व्यक्ति के पास भले ही वस्त्र न हो, खाने के लिए न हो लेकिन ढींगे ऐसे हाँकते हैं कि कारों का कारखाना उसके पास है। ऐसे व्यक्ति अपने आपको ऐसा प्रस्तुत करता है जैसे **प्रसिडेंट ऑफ इण्डिया** हो, यह हमारी अंदरूनी विचारधारा बन गई है। हम ऐसा ही करने और पाने में लगे रहते हैं।

यह सभी जानते और मानते हैं कि यह बहुत बड़ी दुर्बलता है। अहंकार की प्रेरणा से ही हमारे अन्तरंग में महत्वाकांक्षाएँ प्रकट होती हैं। और वहीं से हमारा पतन प्रारम्भ होता है। जब ऐसी महत्वाकांक्षाएँ हमारे जीवन में व्याप्त हो जाती हैं या हम उनके शिकार हो जाते हैं, तो कभी भी शान्त नहीं बैठा जा सकता। अपने हक के महत्व के काम की पूर्ति के लिए हम दूसरों पर पैर रखना भी प्रारम्भ कर देते हैं।

किसी के चाहने मात्र से सम्मान नहीं मिलता। व्यक्ति का व्यक्तित्व ही उसे सम्मान दिलाता है। जिसके व्यक्तित्व में गहराई होती है उसे सम्मान मिलता है। हो सकता है कि आपका व्यक्तित्व भी थोड़ी-सी सम्पदा, सत्ता या शक्ति को पाने पर उनमें ही चूर हो जाता हो। आप सब भूल जाते हैं। लोग आपके आगे सिर झुकाते हैं और इस कारण से आप अपना दबदबा बना लेता है। लोग इनसे दबते हैं, भय खाते हैं, क्योंकि इनके ऊपर ऊपरी पॉवर आ जाता है। लेकिन यह अपनी प्रतिष्ठा नहीं होती है, यह तो आरोपित पॉवर है, जो स्थायी नहीं है। जिसका व्यक्तित्व गहरा होता है, उसकी प्रतिष्ठा स्वयमेव होती है।

दबदबा अलग चीज है और प्रतिष्ठा अलग चीज है। जिसके पास दबदबा है, या जिनके पास पॉवर आ गया है उनसे पंगा लेने से कोई फायदा नहीं। जिसका व्यक्तित्व गहरा होता है उसका दबदबा नहीं होता है अपितु उसकी प्रतिष्ठा होती है। प्रतिष्ठा सामने भी सम्मान दिलाती है और पीठ पीछे भी। दबदबे में जो कुछ

मिलता है वह केवल सामने मिलता है और वह हमारे काम का नहीं होता है, लेकिन जो लोग इसके आदी होते हैं उनका जीवन बहुत ही हास्यास्पद हो जाता है।

एक राजा था, उसके इर्द-गिर्द जो लोग रहते थे, वे राजा की खूब प्रशंसा करते थे। जिससे राजा का सिर आसमान पर चढ़ गया था। एक दिन राजा अपने दरबारियों के साथ समुद्रतट पर गया। समुद्र में ज्वॉर आ रहा था, उसने पूछा - हमारा राज्य कहाँ तक है? आपका राज्य धरती और आसमान सभी जगह है, दरबारियों ने उत्तर दिया। राजा ने समुद्र से कहा - हमारे राज्य में मेरी आज्ञा के बिना कैसे यह चला आ रहा है, इसे पीछे हटाओ। यह मेरा राज्य है। यह सुन समुद्र क्रोधित हो गया, जिससे और अधिक तेजी से ज्वॉर आने लगे। राजा आग-बबूला हो उठा, उसने म्यान से तलवार निकाल ली। तलवार उठाकर लहरों पर चलाने लगा। वह उन लहरों की चपेट में आ गया। समुद्र में डूबकर राजा कहाँ खो गया, किसी को पता नहीं चला।

यह मनुष्य की स्थिति है। हम इससे भी नीचे की स्थिति में पहुँच जाते हैं, जो कि मिथ्या अभिमान का परिणाम होता है। हम अपने व्यक्तित्व की गहराई को अनदेखा कर देते हैं और दूसरे के सिर पर चढ़ने की कोशिश करते हैं। आज हर आदमी बड़ा बनना चाहता है। संत कहते हैं कि बड़ा आदमी मत बनो, भला आदमी बनो। इससे ही उद्धार हो जायगा। बड़ा आदमी अलग है और भला आदमी अलग है।

बड़ा आदमी वह है जिसका पद बड़ा है, प्रतिष्ठा, प्रभुता, पैसा आदि सब कुछ है। लेकिन बड़प्पन नहीं होता। ईमानदारी, आत्मीयता, प्रेम, सहिष्णुता, भलाई आदि इनको करने वाला भला आदमी होता है। भला आदमी साधनहीन होकर भी बड़ा बन सकता है। बड़ा आदमी पद-प्रतिष्ठा पाकर भी ठीक तरह से सम्मान नहीं पा सकता।

एक बार ऐसा हुआ कि एक बड़ा आदमी भले आदमी के घर गया। भला आदमी अपने आफिस में बैठा हुआ था, उसके आने पर उसने सत्कार किया और सामने की कुर्सी पर बैठने को इशारा किया। बड़े आदमी को संकोच लगा, शान के

खिलाफ लगा। भले आदमी ने बड़े आदमी से कहा - मैंने आपके मनोभावों को ताड़ लिया है भाई साहब। आप बहुत बड़े आदमी हैं, आपके लिए और दो कुर्सी लगवा देता हूँ, कृपा कर बैठ जायें। कृपा! मेरे सिर पर बैठने की कोशिश न कीजिए। याद रखना बड़ा आदमी दूसरे के सिर पर बैठने की कोशिश करता है, और भले आदमी को दुनिया सिर पर बैठाती हैं। दुनिया में जितने भी बड़े आदमी हुए हैं, वे सभी विलीन हो गये। दुनिया में उनका नाम नहीं रहा। जबकि जो भले आदमी हुए वे सबके गले के हार बन चुके हैं। हम उनका स्मरण करते हैं। उनको आदर और भक्ति समर्पित करते हैं। वस्तुतः व्यक्ति की महानता उसके पद और वैभव से नहीं उनके व्यक्तित्व एवं आचरण की गहराई पर निर्भर करती है। तभी हमारी भक्ति का निर्धारण होता है।

कभी खुशबू नहीं कहती मुझे तुम सूँघकर देखो

बन्धुओ! मैं हमेशा कहता हूँ कि ऊँचाई सदैव नीचाई से पेश आती है। पेड़ उतना ही ऊपर होता है, जितनी कि उसकी जड़े नीचे होती हैं। वस्तुतः ये हमारे चारित्र की गहराई पर निर्भर करती है। हमारा चारित्र जितना गहरा होगा वह उतना ही महान् बनता है। बन्धुओ! अहंकार से अपने आपको बचाना चाहते हो, तो आप अपने आपको इस प्रकार के विचारों से बचाइये। फालतू की शान से, झूठी महत्वाकांक्षाओं से बचाना चाहिए। पर क्या करें, हमारा नजरिया ही उल्टा हो गया है? माया का काम एवं मायाचारी का व्यवहार है। अगर कोई आदमी अच्छा काम करता है तो हम उसे मानपत्र देते हैं, मानपत्र का हर आदमी भूखा होता है। मान पत्र मिलते ही छाती फूल जाती है। वह हमारी स्वाभाविक आन्तरिक प्रवृत्ति है। हम मान दूसरों के द्वारा ही पाना चाहते हैं।

बन्धुओ, यह हमारी कमजोरी है। संत कहते हैं - महान् बनने की कोशिश करो, महत्त्व अपने आप ही बढ़ जायेगा। हमारे आचरण में गहराई होगी तो वह खुद-ब-खुद मिल जायेगी। जिस तरह खुशबू को कहना नहीं पड़ता कि मुझे सूँघकर देखो, वह अपने आप ही आती है। कम से कम कुंठित महत्वाकांक्षाओं से बचो, अपनी झूठी महत्वाकांक्षाओं के लिए मन को चंचल मत करो। अन्यथा इससे जीवन में बहुत बड़ा धोखा होगा और दुर्गति के पात्र बनोगे।

वस्तुतः हमारे जीवन में अनुकूल-प्रतिकूल संयोग मिलते रहते हैं। वे सब हमारे ही शुभ-अशुभ कर्मों के परिणाम हैं। जिस पर हम गर्व करते हैं या खेद-खिन्न होते हैं। हमें ऐसा लगता है कि हमें अपूर्व लब्धि हुई है। इसे हमने कभी पाया नहीं। सब कहते हैं - तुम क्या? चक्रवर्ती जैसे पुण्यवानों की विभूति भी शाश्वत् नहीं रही। उन्हें जब जाना पड़ा, तो खाली हाथ जाना पड़ा और उनके साथ वैभव का एक कण भी साथ नहीं गया। वैभव, प्रभुता, प्रतिष्ठा, पैसा उनके साथ नहीं गया, तो तुम किस खेत की मूली हो, जो इस हकीकत को समझते हुए भी स्वीकार नहीं करते। वे कभी इस प्रकार की व्यर्थ बात में उलझते नहीं हैं। संत कहते हैं - अपने जीवन की वास्तविकता को समझो और जीवन को तद्रूप ढालने का प्रयत्न करो। तभी हम सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

बन्धुओ, यह बात अपने मानस-पटल पर अंकित कर लो, कि जब तक हमारे ऊपर विषय-कषाय हावी होंगे, तब तक हम चेतना का विस्तार नहीं कर सकेंगे। इनके विवाद हमारे जीवन की प्रगति में बाधक हैं। इनके चलते हम जीवन में कुछ नहीं कर सकते हैं। एक अभिमानी व्यक्ति का मन केवल यही कहता है कि कहीं भी जाऊँ, मुझे लोग मान-सम्मान दें। भले ही मैं इसके लायक हूँ या नहीं। अहंकार का मतलब है अपने आपमें कुछ नहीं होते हुए भी सब कुछ होने की चाहत रखना।

संत कहते हैं - बड़ा बनने या बड़े कहने से कोई बड़ा नहीं हो जाता है। बड़ा तो वह है जिसके जीवन में भलापन प्रकट हो जाता है। लेकिन जब हम कुछ पा जाते हैं तो इतराने लगते हैं। ऐसे बाहर के संयोगों को पाकर जो अभिमान में इतराते हैं, उनके लिए ये पंक्तियाँ कहना चाहता हूँ, जो कि बड़ी सार्थक हैं -

जलधर नया-नया आया और पवन के सहारे ऊँचे आसमान पर चढ़ गया। पर उसे बाहरी जगत का अनुभव नहीं था। दूसरों के सहारे ऊँचा उठना भय से खाली नहीं। इसे वह नहीं जानता था। पवन ने अपना हाथ खींचा और जलधर नीचे आ गया। आसमान में बादल तभी तक टिकता है जब तक कि पवन का साथ रहता है। जिस दिन वायु अपना हाथ खींच लेगी बादल धराशायी हो जायेंगे।

बन्धुओ, याद रखना तुम्हारे पास जितना ठाठ-बाट दिख रहा है वह सब पुण्य की वायु की प्रेरणा से है। जब तक पुण्य की वायु का वेग हमारा साथ दे रहा है तब तक ही है। जिस क्षण यह पुण्य क्षीण हो जायेगा, उसी क्षण सारे के सारे ठाठ यहीं पड़े रह जायेगे।

मैंने सुना था एक दिन कागज का टुकड़ा हवा के सहारे उड़ा और उड़कर पर्वत के शिखर पर पहुँचा। पर्वत ने उसका स्वागत किया। लेकिन कागज के टुकड़े ने पर्वत पर रोब झाड़ते हुए कहा - देखो, मैं तुम जैसी एक-सी मुद्रा में नहीं रहता हूँ, तुम तो जड़वत् अचल रहने वाले हो। देखो, मैं धरती से आसमान तक अपने बलबूते कैसे आया हूँ क्योंकि मेरे जीवन में गति है।

पर्वत ने उसकी बात सुनी। पर्वत कुछ कहने को तैयार हो ही रहा था कि हवा का दूसरा झोंका आया और कागज का वह टुकड़ा फिर उड़ा और नीचे जाकर एक गटर में चला गया। उसका अस्तित्व ही मिट गया। जो कागज का टुकड़ा अभी शिखर पर इतरा रहा था, वही अगले ही क्षण नाली में चला गया।

बन्धुओ, ये हकीकत है हमारा जीवन कागज के टुकड़े की तरह है। पुण्य की अनुकूल वायु के कारण हम पर्वत पर पहुँच जाते हैं और पाप के झोके के आते ही नरक-निगोद की नालियों में पहुँच जाते हैं। इस वास्तविकता को समझो। हवा कभी भी बदल सकती है। ध्यान रखना, जिस दिन यह हवा बदल गई, सारी हवा निकल जायेगी। महान् व्यक्ति वह है जो वैभव पाकर भी विनम्र रहे। बन्धुओ, हम देखते हैं कि पेड़ जब फल वाला होता है तो वह झुक जाता है। इसमें एक बहुत बड़ा सन्देश है। हम जीवन में विनम्रता अपनायें। अभिमान से दूर हो अपने को विनम्र बनायें।

पहचान भले-बुरे व्यक्ति की

एक भले और बुरे व्यक्ति की पहचान क्या है? शास्त्रकार कहते हैं -

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परपीडनाय।

खलस्य साधोः विपरीतमेतत् दानाय ज्ञानाय च रक्षणाय॥

एक दुर्बल व्यक्ति के पास ज्ञान आयेगा तो वह दूसरों में ज्ञान का बघार

लगायेगा, विवाद करेगा। धन पायेगा तो मद करेगा। शक्ति पायेगा तो दूसरों को पीड़ा पहुँचायेगा। ये दुर्बल और दुष्ट प्रकृति के व्यक्तित्व की पहचान है। लेकिन इसके विपरीत सज्जन व्यक्ति यदि विद्या पाता है तो उस ज्ञान को सबको बाँटता है। धन पाता है तो उसे दान देता है। शक्ति पाता है तो दूसरों की सेवा और रक्षा में लगाता है -

बन्धुओ, अपने पुण्य के योग से प्राप्त वैभव को हम अच्छे कार्यों में लगाये। लेकिन क्या बतायें लोगों को अपने पास प्राप्त पुण्य-वैभव दिखता है, लेकिन गुण-वैभव नहीं दिखता है। संत कहते हैं - अपने पुण्य वैभव को गुण-वैभव की वृद्धि में लगाओ। यह पुण्य से जो वैभव पाया है, इससे तुम गुण का वैभव बढ़ाओगे, तब तुम्हारे जीवन का कल्याण होगा। अन्यथा उलझ करके रह जाओगे। हमारे यहाँ १०-११ वीं शताब्दी में एक महान् आचार्य सकलकीर्ति हुए हैं। वे राजा के राज्य में रहा करते थे। कई ग्रन्थों की रचना उन्होंने की। उस समय सोमप्रभ नामक एक श्रेष्ठी रहा करता था। उसके पास पैसा तो बहुत था पर था वह कंजूस। उसका इकलौता बेटा था। वह मर गया। पुत्र की मृत्यु के बाद उसे बड़ा शोक हुआ और वह शान्ति का उपदेश पाने के लिए सकलकीर्ति आचार्य के सम्पर्क में पहुँचा। महाराज ने उसकी बात सुनी, उसे सम्बोधा - तुम्हारे पास धन-वैभव है, उसे छोड़कर जाओगे। इससे पहले कि तुम संसार से जाओ जनकल्याण में उसे लगाना शुरू कर दो। उसे महाराज की बात समझ में आ गई और अपना धन लुटाना शुरू कर दिया। उसकी ख्याति बहुत फैल गई। राजा भोज एक वर्ष में जो दान करता था उतना दान उस श्रेष्ठी ने एक सप्ताह में कर दिया। वह सब जगह चर्चित हो गया। उसकी तुलना महाराज कर्ण से होने लगी। जब लोक में उसकी प्रशंसा होने लगी तो वह फूल गया, अपने आपको बहुत बड़ा दानी मानने लगा। उसके अन्दर मान भर गया। एक बार जब वह आचार्य महाराज के पास गया और उसने महाराज से कहा - मेरे पास सब कुछ तो है पर शान्ति नहीं है। महाराज ने कहा - तुम अभी नशे में हो मैं तुमसे बाद में बात करूँगा। जाओ रातभर वृक्ष के नीचे बैठो। वह अवाक् रह गया। दुनिया मुझे इतना सम्मान दे रही है, दानी कह रही है, मेरी प्रशंसा हो रही है। लेकिन महाराज मुझे नशे में कह रहे हैं। लेकिन वह श्रद्धालु था। वह वृक्ष के नीचे बैठा तो उसे समझ

में आने लगा। उसका होश ठिकाने आने लगा। वह समझ गया कि नशा शराब का ही नहीं होता, मान का भी नशा होता है। अगर मैं इस नशे के प्रभाव में रहूँगा, तो मुझे शान्ति नहीं मिल सकती। उसे वास्तविकता का बोध हुआ। उसे अपने जीवन की दुर्बलता का बोध हुआ। जब तक मैं मान के हाथी पर सवार था तब तक मैं ही बड़ा दिखता था और कोई भी बड़ा नहीं दिखता था। तब मेरी आँखें मुझसे बड़े को दिखाने या दिखने ही नहीं देती थीं। मेरे कान किसी अन्य की प्रशंसा सुनने ही नहीं देते थे।

बन्धुओ, अभिमानी व्यक्ति को न कुछ सूझता है और न वह किसी की सुनता है। लेकिन जब उसे अपने जीवन की वास्तविकता का अहसास होता है, तब उसके अन्तश्चक्षु खुल जाते हैं। वह श्रेष्ठी भी सुबह-सुबह महाराज के पास पहुँचा और कहा - महाराज मुझे क्षमा कीजिए, मैं आपके इशारे को नहीं समझ पाया। मैंने दान तो किया लेकिन सौदा कर दिया। मैंने यश पाया, मान पाया, मैंने समझ लिया कि ये स्थायी हैं। किन्तु जब पुण्य का योग होता है तो ये बिना चाहे मिलते हैं और जब पाप का योग होता है तो ख्यात व्यक्ति को कुख्यात होते देर नहीं लगती है। यही तो सारे जीवन का खेल है।

पुण्य पाप फल माँही, हरख बिलखों मत भाई।

यह पुद्गल परजाय, उपज बिनसे थिर थाई ॥

चक्रवर्ती का भी सिर नीचा

इन्हें याद रखो, पुण्य और पाप के फल में हर्ष और विषाद नहीं। ये आज हैं तो अगले पल नष्ट हो सकते हैं। ये अस्थिर हैं। इसलिये वास्तविकता को समझकर अपने जीवन को तदनुसार ढालना सीखो। दीनता भी दुर्बलता है और अभिमान भी दुर्बलता है, जो इसको समझता है वही अपने जीवन में समता ला करके अपने जीवन को सुखी बना सकता है। हम स्थायी समता का प्रयत्न करें।

अहंकार किसका स्थायी रह पाया है। चक्रवर्ती जैसे दिग्विजयी महापुरुषों का भी अहंकार क्षण में चूर हो जाता है। जब चक्रवर्ती दिग्विजय के लिये जाता है, तो ऋषभाचल पर्वत के निकट पहुँचने पर सोचता है कि चलो ... अपनी प्रशस्ति

लिख लूँ। वहाँ जाकर देखता है कि सौ योजन का पूरा पहाड़ पूर्व चक्रवर्तियों के नाम से खुदा है। उसे कहीं जगह नहीं मिली। तब सोचा, किसी का नाम मिटाकर अपनी प्रशस्ति लिख दूँ। जैसे ही किसी का नाम मिटा कर प्रशस्ति लिखने का सोचा तैसे ही एक दूसरा विचार आ गया, अरे, मैं किसका नाम मिटाकर अपना नाम लिखूँ ? आज मैं दूसरे के नाम को मिटाकर अपना नाम अंकित करूँगा, कल कोई दूसरा आयेगा जो मेरा नाम मिटाकर अपना नाम अंकित कर जायेगा। संसार में हरेक का नाम मिटने वाला है, किसी नाम अमिट नहीं है। इस वास्तविकता को जो जानता है, वह व्यर्थ की चाह नहीं रखता। उसके अन्दर अभिमान ज्यादा बलवान् नहीं बनता।

बन्धुओ, सर्प के दंश का असर तो बहुत जल्दी ठीक हो सकता है, किन्तु दर्प के दंश का असर भव-भवान्तरों तक पीड़ा देता है। दर्प यानी अभिमान। सर्प के दंश की तो बहुत सारी बैक्सीन्स उपलब्ध हैं, लेकिन दर्प की बैक्सीन्स उपलब्ध नहीं हैं। वह भव-भव में पतित बनाता रहता है, नीच बनाता रहता है। इससे अपने आपको बचाइये। दूसरों को दिखाने के चक्कर में कभी-कभी हास्यास्पद स्थिति बन जाती है।

नहीं पड़ें झूठे दिखावे में

अभिमानी व्यक्ति की परिणति कैसी होती है, एक-दो प्रसंग मेरे स्मरण में आ रहे हैं, आपको सुनाना चाहता हूँ।

एक व्यक्ति एक भोज में गया। सब लोग भोजन कर रहे थे। भोजन में पापड़ परोसा जा रहा था, सभी को अखण्डित पापड़ परोसा जा रहा था। जब उसका नम्बर आया तब उसको खण्डित पापड़ मिला। सामने वाले ने इसे अपना अपमान मान लिया। परोसने वाला तो बेखबर था। लेकिन इसने इसे अपना अपमान माना, कि मुझे जानबूझ कर खण्डित पापड़ दिया गया है। यह मुझे नीचा दिखाना चाहता है, ठीक है इसका बदला जब तक न ले लूँ, तब तक चैन नहीं। अपमान का बदला कैसे लें ? उसकी रात्रि की नींद चली गयी। कैसे भी हो मुझे उसके अपमान का बदला लेना है। कुछ नहीं सूझा तो उसने सोचा मुझे भी एक पंगत देनी चाहिए। पंगत

कहाँ से दें। जैसे तो है नहीं। इसलिये बाजार से पैसा कर्ज लिया। कर्ज के जैसे से गाँव को पंगत दी। पंगत में सभी लोग सामिल हुए। पंगत में जब पापड़ परोसने का नम्बर आया तो सभी को खण्डित पापड़ परोसा और जब सम्बन्धित व्यक्ति का नम्बर आया तो उसे खण्डित पापड़ परोसा। सामने वाला सहज भाव से पापड़ खाने लगा। उसके मन में कुछ नहीं था। परोसने वाले ने कहा - देखो, आज मैंने बदला ले लिया ! उस दिन तुमने मुझे खण्डित पापड़ परोसा था। आज हमने भी तुम्हें खण्डित पापड़ परोसा है। उसका नतीजा दिखा दिया।

वह बोला - इतनी ही बात थी तो उसी समय मुझे टोक देते, मैं तुमसे क्षमा माँग लेता। उस खण्डित पापड़ का बदला लेने के लिये कर्जा और पंगत देने की क्या जरूरत थी।

यह उदाहरण हमारी प्रवृत्तियों का ही है। बहुत खराब स्थिति व्यक्ति के साथ बन जाती है। इससे अपने आपको बचाने की कोशिश करना चाहिए। विनम्रता हमारे जीवन की पहचान है। संत कहते हैं -

**सिवाय नाम के बाकी असर निशा से न थे।
जमीं से सद गये झुकते जो आसमां से न थे।**

दुनिया में बड़े-बड़े नाम की चाह वाले लोग यहाँ से चले गये। उनका यहाँ कुछ भी अस्तित्व शेष नहीं है। कल हम भी अस्तित्व शून्य हो जायेंगे। हमारा भी अस्तित्व शेष नहीं रह पायेगा। इसलिये इससे पहले कि हमारे जीवन का अन्त हो, इस तरह की क्षुद्र भावनाओं से ऊपर उठने की कोशिश करें। यह एक ऐसा घुन है, जिससे सब कुछ खोखला हो जाता है। जैसे अनाज में घुन लगता है ना। यह ऐसा घुन है, जो हमारी भीतरी चेतना को खोखला कर देता है। इससे अपने आपको बचाइये। आपकी जेब अगर फटी हो और उसमें जैसे डालें तो क्या जैसे ठहरेंगे ? नहीं। उसी तरह जिसका चित्त अहंकार से फटा हुआ है, उसमें सद्गुण नहीं ठहर सकते। वे ठहरेंगे ही नहीं।

इससे जो अपने आपको बचा लेता है, उसका कल्याण हो जाता है। जो इससे अपने आपको नहीं बचाता, वह संसार में भटकता रहता है। कभी-कभी हम

अपने आपको ऊँचा और दूसरों को नीचा साबित करने को कोशिश करते हैं तो क्या स्थितियाँ निर्मित होती हैं ? मैंने बहुत पहले कुछ पंक्तियाँ लिखी थी, आज के सन्दर्भ में आपको सुना रहा हूँ -

हरी-भरी सुन्दर सुमनों और कोमल कलियों से लदीं
टहनियों ने तने से कहा

हम कितने सुन्दर हैं

तने ने सहजभाव से कहा

हाँ बेटी ! तुम सचमुच सुन्दर हो

पर सौन्दर्य का दर्प इससे तुप्त न हो सका

वह अपने महत्ता की स्वीकृति तो चाहता ही है

दूसरों की हीनता स्वीकार भी आवश्यक मानता है।

और तुम कितने कुरूप हो,

काला-काला भूल-सा रंग और खुरदरी खाल

छी.....,

प्रतिक्रिया कण्ठ तक भर आयी।

फिर भी तने ने अपने आपको यथासंभव मसोसकर कहा

हाँ बेटी, तुम सचमुच सुन्दर हो, मुझमें सौन्दर्य नहीं

पर तुम जिस सौन्दर्य पर इतना इतरा रही हो

उसके आधार रस का भण्डार प्रकृति ने मुझे ही दिया है

यदि मैं अपनी झूठन तुम्हें न दूँ तो तुम्हारा सौन्दर्य पलभर में बिखर जाये

किसकी हम बात करते हैं। बन्धुओ, जो पुण्य और पाप की नश्वरता को जानता है। संसार के सारे संयोगों को संयोग मानता है। उसके जीवन में कहीं भी अभिमान नहीं होता। यहीं कहीं भी उसकी प्रशंसा होती है तो उसका शिर नीचा हो जाता है। वह अपने आपमें बहुत लघुता का अनुभव करने लगता है। इसी लघुता से व्यक्ति को प्रभुता की प्राप्ति होती है। इस बात को हम समझें।

देखा कभी विश्व नक्शे में अपना अता-पता ?

अहंकार को जीतने का एक ही उपाय है कि हम जीवन की वास्तविकता को समझें। यह देखें कि संसार में मैं हूँ क्या ? यह सोचें कि संसार में मुझसे कितने बड़े-बड़े लोग चले गये ? आज व्यक्ति थोड़ी सी उपलब्धियों में मदहोश हो जाता है।

मानलो कोई करोड़पति है, तो दुनिया में कितने करोड़पति हैं ? हिसाब लगाओगे तो पाओगे कि दुनिया में जितने करोड़पति हैं, उनमें तो आपका नाम ही नहीं आ रहा। बड़े-बड़े पैसे वाले भी इस संसार में नहीं टिक पाये तो तुम कैसे टिक पाओगे ?

एक व्यक्ति अपने वैभव की बहुत डींग हाँक रहा था। संत उनके घर तक पहुँचे, तब तक उनकी बातों को सुनकर वे ऊब उठे। घर पर एक ग्लोब (एटलस) रखा हुआ था। उन्होंने पूछा - तुम यह बताओ कि कहाँ रहते हो ? इण्डिया में। इण्डिया कहाँ है ? नक्शे में बता दिया इण्डिया यहाँ है। संत बोले - इण्डिया में भी कहाँ रहते हो ? मैं कलकत्ता में रहता हूँ। कलकत्ता में तुम कहाँ रहते हो ? चौरंगी में।

विश्व के नक्शे में कलकत्ता तो फिर भी मिल सकता है, लेकिन कलकत्ता की चौरंगी उस नक्शे में नहीं मिल सकती। समझ लो आप संसार में कहाँ हो ? फिर तुम्हारा मकान और ये सारी चीजें, इनका तो कोई अता-पता ही नहीं है। हम हैं कहाँ ? हम बहुत छोटे-से हैं। लेकिन मानते बहुत बड़ा हैं।

चक्रवर्तियों की सार्वभौमिक सत्ता और वैभव भी जब उनके साथ नहीं गयी तो हम और आप कहाँ लगते हैं ? करोड़पति को रोडपति होने में एक पल भी अधिक है। रोडपति को करोड़पति बनते भी देर नहीं लगती।

संत कहते हैं - जिसे हम पतित समझ रहे हैं, अगले पल वह पावन हो सकता है। और जिसे हम महान् मानते हैं अगले पल वह रसातल में जा सकता है। जहाँ पर्वत है वहाँ खाई बन सकती है और जहाँ खाई है वहाँ पर्वत बन सकता है। एक पल में क्या से क्या हो जाय ? इसलिये अपने आपको जो बड़ा मानने की प्रवृत्ति है, उससे अपने आपको बचाने की कोशिश करो। ये सब आत्मविकास के अवरोध हैं। जब तक इस तरह की प्रवृत्तियों से जुड़े रहेंगे, अपने जीवन को नहीं बढ़ा सकेंगे।

एक बार कुएँ ने समुद्र से शिकायत की - तुम नदी, नालों आदि सभी को अपने में समा लेते हो, पर मुझे क्यों नहीं समाते ? मेरे साथ पक्षपात क्यों करते हो ? समुद्र ने कहा - क्या बताऊँ, चाहता तो मैं भी हूँ कि तुझे भी अपने में समा लूँ। लेकिन तुमने तो अपने चारों ओर दीवालें खड़ी कर रखी हैं। जब तक ये दीवालें हटाओगे नहीं, मैं तुम्हें अपने में समाऊँगा कैसे ?

बन्धुओ, बहुत गहरा संदेश छिपा है इसमें। जो अपने चारों ओर अहंकार की दीवालें खड़ी करता है वह अपने क्षुद्र व्यक्तित्व को विराट् समुद्र तक पहुँचाने में समर्थ नहीं हो सकता। हम जब तक ये दीवालें खड़ी करे रहेंगे, कुएँ ही बने रहेंगे। समुद्र बनना है तो इन दीwalों को हटाने की जरूरत है। उस दीवाल को ढहा दीजिये, जो अभिमान के कारण खड़ा कर रखा है। उसे जैसे ही ढहाएंगे, आपके व्यक्तित्व का विकास अपने आप आरम्भ हो जायेगा। जैसा कि मैंने कहा - नीचा व्यक्ति भी बहुत जल्दी ऊँचा बन सकता है। हम उसे नीच मान-मानकर उसकी उपेक्षा करते हैं। उसे तिरस्कृत करते हैं। पर दुनियाँ में तिरस्कार पाने वाला व्यक्ति भी शिखर तक पहुँच सकता है। हमारे भावों में उतार-चढ़ाव कब आ जाये, कहा नहीं जा सकता। इसलिये कभी किसी का तिरस्कार नहीं करो। दूसरों का तिरस्कार करने से हम अपने का ही तिरस्कार कर लेते हैं।

धर्म की भूमिका सर्वोपरि

आचार्य समन्तभद्र कहते हैं -

**स्मयेन योऽत्येति धर्मस्थानगर्विताशयः ।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैः विना ॥**

जो अपने अभिमान के नशे में चूर होकर दूसरों का तिरस्कार करता है, वह दूसरों का नहीं, खुद का ही तिरस्कार कर देता है। वह अपने धर्म का ही तिरस्कार कर देता है। क्योंकि **न धर्मो धार्मिकैः विना**। धर्म धर्मात्मा के अभाव में नहीं हो सकता।

आचार्य समन्तभद्र यह भी कहते हैं - कि धर्म के प्रभाव से कुत्ता भी देव हो जाता है और अधर्म के प्रभाव से देव भी कुत्ता हो जाता है। इसलिये इस बात को समझो, बाहर का वैभव महत्त्वपूर्ण नहीं है। धन वैभव तो क्षणक्षयी है, गुणवैभव ही महत्त्वपूर्ण है। जो धर्म के ही प्रभाव से प्राप्त होता है। जो अपने सोच के परिवर्तन से प्राप्त होता है। इसलिये यदि अपने अभिमान को जीतना है तो एक काम कीजिए। संसार के सारे संयोगों को नश्वर मानिये। जीवन को नश्वर मानिये, धन को नश्वर मानिये, और जीवन में जो भी अनुकूल चीजें मिली हैं, उनको नश्वर मानिये। यह सब पुण्य के प्रताप से प्राप्त हुई हैं, आज हैं, कल रहे या न रहे ! कोई भरोसा नहीं।

बोध रखें अपनी लघुता का

दूसरी बात, यदि आप अपने को अभिमान से बचाना चाहते हैं, तो हमेशा अपनों से बड़ों की ओर ध्यान दीजिए। देखिये कि मुझसे बड़े कितने लोग हैं? दो तरह की दृष्टि होती है। बड़ों को देखकर विनम्रता भी आती है और बड़ों को देखकर अभिमान भी आता है। अज्ञानी व्यक्ति बड़ों को देखकर ईर्ष्या करेगा! उसके अन्दर आग लग जायेगी। यदि ऐसी भूमिका है तो कभी बड़ों की ओर मत देखना।

एक तरफ ज्ञानी व्यक्ति होता है, जो बड़ों को देखकर समझता है कि मैं तो उनसे बहुत लघु हूँ। उसे अपनी लघुता का बोध हो जाता है। ऐसा लघु व्यक्ति ही महान बनता है। वह निरन्तर ऊपर चढ़ता जाता है।

तीसरी बात, अभिमान से बचना है तो अपनी वास्तविकता को समझें। मेरे सम्पर्क में एक बहुत बड़े धनपति हैं। आज उनके पास किसी भी चीज की कमी नहीं। लेकिन वे अपने प्रारम्भ के दिनों को कभी नहीं भूलते। वे कहते हैं - महाराज, हमारे पास क्या था? हमने तो डाइवरी करके अपने जीवन की शुरूआत की है। आज उनको किसी चीज की कमी नहीं। उतनी ही उदारता है, उतना ही खुला हाथ है और दीन-दुःखियों की सेवा में उतना ही काम आते हैं। एक साधारण व्यक्ति की तरह ही जी रहे हैं। वस्तुतः जो अपनी वास्तविकता को समझता है, वह कभी अहंकार नहीं करता। वह जानता है कि हमने कहाँ से शुरू किया! आज पुण्य के योग से सब अनुकूलताएँ हमें मिली हैं, कल रहें या न रहें, कोई भरोसा नहीं।

मैंने आपसे तीन बातें कही - संसार के संयोगों को नश्वर मानें। अपने से बड़ों को देखें और अपने में लघुता का भाव बनाये रखें। और तीसरी बात, अपनी वास्तविकता को कभी न भूलें। यह सोचें कि मैं क्या लेकर के आया था और क्या लेकर जाऊँगा। यह विचार करें। यदि ये भावनायें आपके में मन स्थायी रूप से स्थिर हो जाती हैं तो आप चाहे कितनी ही ऊँचाई पर क्यों न चले जाये, आपके मन में अभिमान होगा ही नहीं।

एक बात ध्यान रखना, जब तक मनुष्य के पुण्य का योग है, उसके जीवन में निरन्तर प्रगति होती है। वह ऊँचाई पर चढ़ता है। कोई रोकना भी चाहे तो नहीं

रुकता। वह चलेगा और निरन्तर चलेगा। यदि पाप का उदय आयेगा तो कोई रोक भी नहीं सकेगा, उसे निश्चत रूप से गिरना ही पड़ेगा। इस बात को निश्चित रूप से समझिये। पुण्य-पाप का खेल जानिये।

रावण जैसा व्यक्ति, जो तीन खण्ड का अधिपति था। जिसकी तूँती बजती थी। जिसने स्वर्ग के इन्द्र को भी चुनौति दे डाली थी। ऐसा रावण। जब पाप का उदय आया तो उसके ही द्वारा छोड़ा गया चक्र स्वयं के विनाश का कारण बन गया, समझिये।

पाप का उदय आने पर मित्र भी अरि बन जाते हैं। शत्रु बन जाते हैं और पुण्य का उदय होने पर शत्रु भी मित्रवत् आचरण करने लगते हैं। खेल तो उस कर्म का है। इस पर जिसका श्रद्धान होता है वह कहता है कि - मैं किसका मद करूँगा? आजकल के लोग अपने आपको बड़ा मानते हैं, यह देखकर मुझे तो ऐसा लगता है कि जैसे कभी-कभी बच्चे कुर्सी पर खड़े होकर पापा से कहते हैं कि देखो, मैं कितना बड़ा हो गया। आपसे भी बड़ा हो गया। पापा कहते हैं - हाँ, तू बड़ा हो गया। लेकिन मन ही मन हँसते हैं, बेटे! जब तू नीचे उतरेगा तो तुझे अपनी वास्तविकता पता चलेगी। यही हकीकत है।

बच्चे तो थोड़ी देर के लिये कुर्सी पर चढ़ते हैं और कहते हैं कि मैं कितना बड़ा हो गया। किसी आदमी को यदि कुर्सी मिल जाती है तो वह अपने आपको बड़ा मानने लगता है। और शायद संसार का सबसे बड़ा आदमी मानने लगता है। लेकिन उसे नहीं मालूम कि जिस दिन इस कुर्सी से उतरूँगा तो भूत हो जाऊँगा। मेरे साथ भूत लग जायेगा।

जो लोग कुर्सी के पीछे भागते हैं, वे निश्चित रूप से भूतपूर्व हो जाते हैं। और जिनके पीछे कुर्सीयाँ भागती हैं वे अभूतपूर्व होते हैं। कुर्सी के पीछे मत भागो। ऐसा जीवन बनाओ, कि कुर्सीयाँ तुम्हारे पीछे भागें!

ये बड़े-बड़े लोग, तीर्थकर और चक्रवर्ती जैसे लोग, जिनको सिंहासन मिला। लेकिन उन्हें वह रास नहीं आया। वे कुर्सी के पीछे नहीं भागे, कुर्सी को छोड़ दिये। वे आज हम सबके लिये अभूतपूर्व है। और जो कुर्सी पर ही बैठे रहे, उन्हें नीचे जाना पड़ा। कहा जाता है -

जे राजेश्वरी सो नरकेश्वरी ।

पत्थर में भी भगवान छिपे हैं

एक बहुत अच्छा प्रसंग सुनाकर अपनी बात को समाप्त करता हूँ। एक व्यक्ति चला जा रहा था कि उसके पैर की ठोकर से एक पत्थर उचट कर गुलाब के पौधे के पास जा गिरा। गुलाब के पौधे ने जैसे ही उस पत्थर को देखा तो उपहास मिश्रित वचनों से कहा - यह भी कोई जिंदगी है, केवल ठोकर ! पत्थर ने गुलाब की इस व्यंगोक्ति को सुना तो मसोसकर रह गया। करता क्या ? उसके नसीब में ठोकर ही लिखी थी। लेकिन कहते हैं कि कभी-कभी घूरे के दिन भी फिर जाते हैं।

थोड़ी ही देर में एक दूसरा राहगीर उधर से गुजरा। उसकी दृष्टि उस पत्थर पर पड़ी। उसने पहली ही नजर में पत्थर के भीतरी और बाहिरी स्वरूप को समझ लिया। उसने उसे उठा लिया, उलट-पलट कर देखा और अपने घर ले आया। उसे सुन्दर आकार देना शुरू कर दिया। अपनी छैनी-हथोड़ी से उसे तराशा। तराशते-तराशते उसका विकार निकला और वह एक सुन्दर प्रतिमा का आकार बन गया। उसने उस प्रतिमा को अपने घर के पूजाघर में विराजमान किया। और अगले दिन उसने उसकी पूजा के लिये जो फूल चढ़ाया, वह वही फूल था जो उपहास कर रहा था। प्रतिमा ने उस फूल को देखा तो कहा कुछ नहीं, मुस्कराकर रह गया। फूल स्वयं में शर्मिंदगी महसूस कर रहा था। बन्धुओ, यही जीवन की वास्तविकता है।

जो आज एक अनाथ है, कल नरनाथ होता वही।

जो आज उत्सवमग्न है, कल शोक कर रोता वही ॥

इस जीवन की वास्तविकता को समझो, अनाथ को नरनाथ बनते कोई देर नहीं लगती। जहाँ उत्सव है, वहाँ उदासी छाते कोई देर नहीं लगती। कब रंग में भंग हो जाय, इसलिये इस वास्तविकता को समझिये और अपने व्यक्तित्व को गहरा बनाने की कोशिश कीजिए। बन्धुओ, मैं तो कहता हूँ -

अकड़ खास मुर्दे की पहचान है।

शुकता वही है जिसमें जान है ॥

ईगो को टालें जीवन से

वस्तुतः यह अकड़ मुर्दानगी है। जड़ता है। जो विनम्र है उसमें ही जिंदगी है। यह जीते जी मुर्दा बनाने वाला तत्त्व है। यह ईगो प्राबलम्ब घर-घर में खड़ी होती है। हर क्षेत्र में यह टकराता है। यदि इसे दूर नहीं करोगे तो सुख से नहीं जी सकोगे। पिता-पुत्र में ईगो टकराता है। पति-पत्नि में ईगो टकराता है। भाई-भाई में ईगो टकराता है। कहीं जाओ, यह हर जगह उपस्थित रहता है। आजकल तो एक लतीफा जैसा बन गया है। क्या है ? ईगो प्राबलम्ब। किसका ईगो प्राबलम्ब ? अहंकार व्यक्ति को कभी एडजेस्ट नहीं करने देता। अहंकार सदैव लड़ाई उत्पन्न करता है, समझौता नहीं होने देता। संत कहते हैं - टकराव नहीं समझौते का मार्ग अपनाओ। यह तभी संभव है जब आप अपने अहंकार को ताक पर रख देने की कला सीखेंगे। अहंकार को एक तरफ रखिये। ध्यान रखिए, सम्बन्धों की मधुरता अहंकार से नहीं, आत्मीयता से होती है। यदि आप आत्मीयता के अभ्यासी बन जाते हैं तो आपके सम्बन्ध सर्वत्र मधुर बनेंगे। यदि सम्बन्ध मधुर बनते हैं तो जीवन का आनन्द है। यदि उसकी जगह आप अहंकार को प्रमुखता देते हैं तो सम्बन्धों में कड़वाहट घुलती है। वहाँ केवल नरक है।

यह आपके ऊपर है कि आप अपने जीवन को नरक बनाना चाहते हो या नन्दनवन। नन्दनवन की तरह जीवन को खिला रखना चाहते हो, तो अपनी इन दुर्बलताओं को उखाड़ फेंकना शुरू करो। जब तक ये दुर्बलतायें हावी होंगी, तुम अपने जीवन को सुखी नहीं बना सकते। यह हम सबके लिये अभिशाप बन रहा है।

आज हम रोज सुनते हैं कि डायबोर्स हो रहा है। एक-दूसरे में दूरियाँ होती जा रही हैं। एक-दूसरे के प्रति गहरा मन-मुटाव फैल रहा है। इसके पीछे कारण क्या है ? इसमें सबसे प्रमुख कारण है अहंकार।

आजकल सभी लोग अहमिन्द्र बने रहना चाहते हैं। सब एकदम सुपर बनना चाहते हैं। नीचे कोई नहीं रहना चाहता। यदि सभी मंच पर बैठोगे तो नीचे कौन रहेगा ? मंच का महत्त्व तभी है, जब नीचे कोई हो। क्या करें ? हर आदमी मंच

चाहता है। यह हमारी एक बहुत बड़ी कमी है। इस कमी से अपने आपको बचाइये। अपने जीवन में उभरने वाली समस्याओं का समाधान आपके ही पास है। किसी दूसरे के पास नहीं। समस्या आपकी है तो समाधान आपके ही पास है। करना भी आपको ही पड़ेगा।

यह आपके ऊपर है कि आप सुलह और समन्वय का जीवन जीना चाहते हो या टकराव और कटुता का। कहीं हों, सेक्रिफाइज् कीजिए। छोटे बनकर रहने में जो शान्ति है, वह बड़े बनने में नहीं। उसमें तो मात्र अशान्ति आती है।

एक बार मेरे पास पति-पत्नि आये। उन दोनों में बड़ी अनबन थी। घोर अनबन, एक-दूसरे से बातचीत ही नहीं करते थे। पत्नि आयी बोली - महाराज, मुझे ब्रह्मचर्यव्रत दे दो। उसकी उम्र देखकर मुझे आश्चर्य हुआ, इतनी अल्प उम्र में ब्रह्मचर्य कैसे निभेगा? मैंने पूछा - ब्रह्मचर्य निभ जायेगा क्या? बोली - महाराज, साल भर हो गये, हम एक दूसरे से बात ही नहीं करते।

मैंने कहा - पहले ढंग से रहना सीखो, फिर व्रत लेना। ऐसा यह ब्रह्मचर्य व्रत नहीं माना जाता। मैंने उन्हें समझाया। बात-बात में टकराव, एक दूसरे के साथ कोई समन्वय करने की कोशिश ही न करे। और रोज एक-दूसरे के बीच कलह हो। मैंने उन्हें समझाया कि - आप अपने अहंकार को शान्त कर लो, तो चित्त ज्यादा शान्त होगा या अहंकार का पोषण करने में चित्त शान्त होगा। यदि एक पल हमने उदारता का परिचय दिया तो पूरे जीवन की शान्ति हमें मिल रही है। वह अच्छी है या थोड़ी सी अनुदारता के कारण जीवन भर की अशान्ति। आप चुनिये। आजकल अधिकार की बात करते हैं। आजकल के लड़के भी पढ़-लिख गये हैं और लड़कियाँ भी पढ़-लिख गयी हैं। इसलिये कोई किसी से समझौता करना ही नहीं चाहता। कोई एडजस्ट करना ही नहीं चाहता।

इसके कारण सारा जीवन नरक बन रहा है। दो में से कोई एक तो समझदार बन जाओ। काम तो तब बनेगा, जब दोनों एक-से हो जायेंगे। जब दो तार टकराते हैं तो क्या होता? शार्टसर्किट। न जाने आपके घर में रोज कितनी बार शार्टसर्किट होता है। बाहर की शार्टसर्किट के लिये तो आपने फ्यूज वायर की व्यवस्था कर

रखी है। भीतर के शार्टसर्किट का भी इंतजाम होना चाहिए। कभी-कभी बड़ी विचित्र स्थिति हो जाती है।

पति-पत्नि में अनबन हो गयी। पति को कोई काम था, जिसके लिये सुबह पाँच बजे उठना था। उठने की आदत आठ बजे की थी। पत्नि से बोलचाल बंद है। बोलूँ कैसे? अहंकार बीच में आ रहा है। इसलिये उसने एक कागज पर लिखकर रख दिया कि कल मुझे काम है पाँच बजे उठा देना। अगले दिन पति उठा नहीं, पत्नि ने उठाया नहीं। पति जब उठा तो आठ बज चुके थे। यह देख पति तमतमा उठा। उसने कहा - मैंने लिखकर रख दिया था और इसने मुझे उठाया नहीं। बड़बड़ाना शुरू किया। अन्ततः पत्नि से पूछा - तुमने मुझे उठाया क्यों नहीं? वह बोली - आपने जो कहा था वह कर दिया था। क्या किया था? बोली - तकिया के नीचे देखो। वहाँ एक कागज रखा था, जिस पर लिखा था कि पाँच बज गये हैं उठ जाओ।

यह जीवन है। ऐसे जीवन से क्या होगा? यह व्यर्थ का जीवन है। आखिर इसी को बोलते हैं अहंकार। जो तुम्हारे जीवन को नरक बना दे उसका नाम है अहंकार। जो तुम्हारे चित्त को अशान्त बना दे उसका नाम है अहंकार। जो तुम्हारे जीवन की समरसता को लील ले उसका नाम है अहंकार। जो तुम्हारे जीवन में कड़ुवाहट घोल दे उसका नाम है अहंकार। जो तुम्हारे जीवन की मधुरता को नष्ट कर दे उसका नाम है अहंकार। यदि ये चीजें आपको स्वीकार हैं तो आप अहंकार को पालिये। और यदि इनसे मुक्ति चाहते हो तो आप अहंकार से मुक्ति पाइये। मैं अपनी वाणी को यही विराम दे रहा हूँ।

चिंता की चिता जलायें

एसो पंचमोयारो सब्बपावप्पणासणो ।

मंगलाणं च सब्बेसिं पढमं होइ मंगलं ॥

चिन्ता की चितवन गहरी

जीवन गुलाब के फूल-सा खिला रहना चाहिए । गुलाब काँटों से घिरा रहता है, लेकिन फिर भी खिला रहता है । गुलाब के पौधे से हम जीवन की सच्चाई का रहस्य जान सकते हैं । हमारे जीवन में अनेक प्रकार की विसंगतियाँ जुड़ी रहती हैं । जैसा हम चाहते हैं वैसा सदैव घटित नहीं होता । जब हम अपने जीवन को विषमताओं से घिरा पाते हैं, उलझा पाते हैं तो हमारा चित्त उलझ जाता है । मन अशान्त हो जाता है, उद्विग्नता छा जाती है । हमारा सारा जीवन चिन्ता में खुल जाता है । चिन्ता हमारे जीवन को रुग्ण बनाती है । या यूँ कहें कि वह हमारे अन्तर्मन को भीतर से खोखला बना देती है । जब मनुष्य चिन्ताग्रसित हो जाता है तो उसके सारे मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं । उसे कुछ सूझता नहीं है । यह मनुष्य के जीवन की एक बहुत बड़ी समस्या है, जो हमारे जीवन को रुग्ण बनाती है और विकास में अवरोधक बन जाती है ।

हम सोचें, चिन्ता क्या है ? हम चिन्ता क्यों करते हैं और उस चिन्ता से मुक्ति का उपाय क्या है ? संत कहते हैं कि - तुम गुलाब से खिले रहो । लेकिन आज के व्यक्तियों को हम देखते हैं तो उनका चेहरा मुरझे कमल की तरह होता है । मुरझाये हुए कमल की आभा, उसकी दमक, उसकी चमक सब कुछ खत्म हो जाती है । फूल तभी तक फूल है, जब तक वह खिला रहे । जीवन तभी तक ही जीवन है जब तक उसमें जीवन रस रहे । जैसे ही जीवन में चिन्ता का असर फैलने लगता है, हमारे जीवन का रस नीरस हो जाता है ।

यह सब कुछ हमारे नजरिये पर निर्भर करता है । आज हर मनुष्य के चित्त पर किसी न किसी चीज़ की चिन्ता है । चिन्ता का जन्म तब होता है, जब हम कुछ चाहते हैं और उसकी पूर्ति नहीं हो पाती । जब हमें कुछ प्रतिकूल लगने लगता है, तब हमारे चित्त पर चिन्ता हावी होने लगती है । उस चिन्ता से बचा कैसे जाय ? जैसे किसी ने हमसे कुछ बोला । उसने ऐसा बोल दिया, अब उसका नतीजा क्या होगा ? मैंने उसको यह जबाव दे दिया, पता नहीं वह क्या सोचेगा ? मुझे मालूम नहीं अब इसका परिणाम क्या होगा ? मैंने कारोबार शुरू किया है, शुरू तो कर दिया, पता नहीं चलेगा कि नहीं चलेगा ? विद्यार्थी परीक्षा देने के लिये बैठा है, पता नहीं पास होऊँगा या नहीं ? अच्छे अंकों से पास होऊँगा या नहीं । मैं इन्टरव्यू देने के लिये गया हूँ सिलेक्शन होगा या नहीं । ये अनेक प्रकार की चिन्ताएँ व्यक्ति के मन में सवार होती हैं । एक पिता की जवान बेटी है, अब उसे दामाद तलाशने की चिन्ता है । कुछ चिन्ताएँ सार्थक होती हैं और कुछ निरर्थक । मनुष्य के अन्तर्मन का विश्लेषण करके जब हम देखते हैं, तब हमें यह समझ में आता है कि सार्थक चिन्ताएँ कम होती हैं और निरर्थक अधिक ।

आज आप अपने मन का विश्लेषण करके देखिएगा । सुबह से शाम तक आपकी जो चिन्तनधारा होती है, उसमें कितनी मतलब की होती है और कितनी बेमतलब की ? बेमतलब की सारहीन बातों में हम अपने चित्त को ज्यादा उलझाते हैं । मतलब की बातों में हम कुछ विचार करें तो फिर भी उसका अर्थ है, बेमतलब की बातों में अपने जीवन को उलझाना केवल नादानों ही समझी जायेगी, बेबकूफी समझी जायेगी, लेकिन मुश्किल है हममें से प्रत्येक व्यक्ति का जीवन इसी प्रकार की बेबकूफी पूर्ण चिन्तन में उलझा रहता है । उसे समझ में नहीं आता कि वह क्या कर रहा है और उसे क्या करना चाहिए ?

हमारा चित्त जब घबराता है, मन में आशंका उत्पन्न होती है, भय जन्म लेता है, और वहीं से चिन्ता उत्पन्न होनी शुरू हो जाती है । यहीं हमारे जीवन का सारा ताना-बाना नष्ट हो जाता है ।

तनाव का ताना-बाना

वैज्ञानिक कहते हैं कि चिन्ता से शारीरिक और मानसिक दोनों स्तर पर मनुष्य की बहुत ज्यादा हानि होती है। चिन्ता हमारे चैन को लीलती है और हमारे शरीर के स्वास्थ्य को भी बुरी तरह प्रभावित करती है। अल्सर जैसी घातक बीमारी चिन्तातुर व्यक्ति के ही जीवन में देखने को मिलती है। चिन्ता और तनाव ये आज की बहुत बड़ी बीमारियाँ हैं। हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में तनावग्रस्त है, उस तनाव की स्थिति में कभी-कभी ब्रेन हेमरेज हो जाता है, कभी हार्ट-अटेक भी हो जाता है। यह तनाव एक बड़ी खतरनाक बीमारी है।

इस तनाव में से 'त' निकाल देने पर तनाव बन जाता है। तनाव से पार उतरा जाता है। जबकि तनाव आदमी को डुबो डालता है। तनाव का जो 'त' है वह बहुत खतरनाक होता है। हम व्यर्थ के वितर्क-जालों में अपने आपको उलझाते हैं। वहीं से तनाव उत्पन्न होना प्रारम्भ हो जाता है और वहीं से हमारे जीवन का सारा संतुलन बिगड़ना आरम्भ हो जाता है। इस चिन्ता या तनाव से मुक्ति कैसे पाई जाये ? जब हमारे मन में ज्यादा तनाव होता है, तब भारी नुकसान होता है।

आप लोग घर में खाना बनाती हैं, तो कुकर का यूज करती हैं। कुकर में जब खाना तैयार हो जाता है, तो क्या बजती है ? सीटी। यदि सीटी न बजे और आपने ध्यान नहीं दिया तो क्या होगा ? कुकर फट जायेगा।

बस, मैं यही कहना चाहता हूँ, जब-जब आपके चित्त पर तनाव का दबाव बढ़े, प्रसन्नता की सीटी बजाइये, अन्यथा ये दिमाग का प्रेशर कुकर फटे बिना नहीं रहेगा। मुस्कुराइये। प्रसन्नता लाइये। अपने आप सारा का सारा तनाव शान्त होगा।

बन्धुओ, मैं कहता हूँ कि हमारा सारा जीवन अपने दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। जहाँ से चिन्ताएँ जन्म लेती हैं, वहीं चिन्ताओं को दफन भी किया जा सकता है। चिन्ताएँ हमारी अज्ञानता से प्रेरित होती हैं। चिन्ताएँ अर्थहीन होती हैं। यदि इस समीकरण को हम समझ लेते हैं तो हम अपने जीवन में बहुत कुछ

परिवर्तन घटित करने में सक्षम हो सकते हैं। जैसे कोई तीन और तीन को गणित के सामान्य नियम के हिसाब से जोड़े तो क्या होगा ? छह बनेगे। लेकिन तीन के आगे तीन लगा देते हैं तो तेतीस बन जाता है। तीन और तीन को यदि पलट दें तो छयासठ हो जाता है। दोनों तीन को एक-दूसरे के विरुद्ध लगा दें तो छत्तीस का आंकड़ा भी बन जाता है। और तीन में तीन का गुणा करने पर नौ भी होते हैं। यदि तीन को तीन से माइनस कर दें तो शून्य होता है। यह गणित का खेल है।

तीन और तीन को तो छह हर कोई कर लेता है। मजा तो तब है कि हम तीन और तीन को तेतीस या छयासठ करें। जीवन में आने वाली स्थितियाँ तो सबके साथ रहती हैं, उनसे प्रभावित तो हर कोई हो जाता है। मजा तो तब है, जब जीवन में घटने वाली प्रतिकूलताओं और विषमताओं को भी व्यक्ति सहजता से स्वीकार ले और अपने जीवन के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करे। वास्तव में यही जीवन का खेल है।

आप देखिए, आपकी चिन्ता का कारण क्या है ? आपके तनाव का कारण क्या है ? मेरे अनुसार चार स्थितियों में व्यक्ति का चित्त तनावग्रस्त होता है - 1. विपरीत परिस्थितियाँ, 2. प्रतिक्रिया, 3. भय और 4. आराम। आपकी सारी चिन्ताएँ इन्हीं में केन्द्रित होंगी। जब आपके सामने कोई विपरीत स्थिति निर्मित होती है, तब चित्त व्याकुल हो जाता है। जीवन है, जीवन में सदैव एकरूपता तो रहती नहीं। हमेशा अनुकूलता बनी रहे, ऐसा भी नहीं होता। अथवा प्रतिकूलता बनी रहे, ऐसा भी नहीं होता। लेकिन हम हैं, जो हमेशा सुबह के दर्शन करना चाहते हैं। यह भूल जाते हैं कि स्याह रात में से गुजरे बिना भोर के दर्शन नहीं होते। रात के बीतने पर ही प्रभात होता है। अन्धकार के नष्ट होने पर ही प्रकाश होता है। प्रतिकूलता के माध्यम से ही अनुकूलता मिलती है। या यूँ कहें प्रतिकूलता की डाल में ही अनुकूलता के पुष्प खिलते हैं। यह प्रकृति का नियम है।

जब कभी हमारे जीवन में प्रतिकूल परिस्थिति आती है, तो हमारा चित्त दोलायमान हो उठता है। उसे कुछ समझ में नहीं आता। वह कुछ कर नहीं पाता। ऐसी स्थिति में रात-दिन उसके चित्त में एक ही चिन्ता सवार हो जाती है कि

‘आखिर ऐसा हो गया अब क्या होगा?’ व्यापार किया था, सोचा सफलता मिलेगी, सफलता नहीं मिली। वांछित सफलता नहीं मिली। उलटा नुकसान हो गया सो बाजार का कर्ज चढ़ गया। कर्ज चढ़ा सो चढ़ा, चिन्ता और चढ़ गयी।

अरे भैया, मैं आपसे पूछना चाहता हूँ, क्या आप चिन्ता करने से अपने कर्ज को पूरा करने में सक्षम हो जाओगे? ठीक है, नुकसान हुआ है, इसी का नाम तो व्यापार है। इसमें कभी लाभ और कभी नुकसान तो होता ही है। सदैव लाभ हो, ऐसा कोई व्यापार नहीं। व्यापार में लाभ के साथ नुकसान भी जुड़ा रहता है। यदि नुकसान हो भी गया है तो अपने चित्त को उससे ज्यादा प्रभावित न होने दें। देखें किन-किन कारणों से नुकसान हुआ है, उसकी समीक्षा करें। समीक्षा करके नये सिरे से काम करना शुरू करें। ताकि उस नुकसान की भरपाई कर सकें। चिन्ता में गर्दन लटकाकर बैठे रहने से नुकसान तो करेंगे ही, अपितु जो हमारी प्रतिभा या क्षमता है वह भी प्रभावित होती है। नतीजा यह होगा कि वह बोझ और अधिक बढ़ जायेगा।

विपरीत स्थिति को मनुष्य बर्दाश्त नहीं कर पाता। उसके कारण उसके चित्त पर अनावश्यक दबाव पड़ता है। तनाव बढ़ता है, चिन्ता बढ़ती है। संत कहते हैं - इससे बचना चाहिए। हमेशा इस बात का ख्याल रखें कि परिस्थितियाँ हमारे अधीन नहीं होती। परिस्थितियाँ संयोगों के अधीन हैं। संयोगों के अनुकूल होने पर परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं। संयोगों के प्रतिकूल होने पर परिस्थितियाँ प्रतिकूल हो जाती हैं। हम अनुकूल का भी स्वागत करें और प्रतिकूल का भी स्वागत करें। संयोग बदलेगे तभी स्थितियाँ बदलेंगी। संयोग नहीं बदलेगे तो हम चाहे कितनी भी चिन्ता करें, उसमें परिवर्तन संभव नहीं है। इसलिये जब ऐसी स्थिति आये, तब चिन्तारूढ़ होने की जगह चिन्तन करें। चिन्तन से रास्ता निकलता है और चिन्ता रास्ता को बंद करती है।

संपत्ति-विपत्ति साथ रहती हैं

चिन्तन से रास्ता निकालें, कि ठीक है, ऐसा हमारे साथ घटित हुआ, लेकिन इससे बचने का उपाय क्या है? इसका निदान क्या है? इस बीमारी को दूर

कैसे करें? आप विश्लेषण में लग जाइये, आपका काम अपने आप अनुकूल होना शुरू हो जायगा।

हर व्यक्ति के जीवन में किसी-न-किसी प्रकार की प्रतिकूलताएँ तो होती हैं। वह रात-दिन उसी प्रतिकूलता का रोना रोते हुए दुःखी होता रहता है। संत कहते हैं - रोइये मत, जो है उसे स्वीकारिये। विपत्ति आयी है, तो जायेगी। सम्पत्ति हो या विपत्ति, दोनों शाश्वत नहीं हैं।

राजा भोज के दरबार में एक दरिद्र व्यक्ति पहुँचा। द्वारपालों ने उसे रोका। उसने कहा - जाओ, राजा से कहो कि आपका भाई आपसे मिलना चाहता है। द्वारपालों ने उसकी शकल देखी तो बड़ा आश्चर्य हुआ। फटे हाल है और कह रहा है मैं राजा भोज का भाई हूँ। पता नहीं ये कैसे राजा भोज के भाई हो गये?

द्वारपाल राजा भोज के पास गया और कहा - बाहर कोई दरिद्र नारायण खड़े हैं, वे अपने आपको आपका भाई बताते हैं, क्या उनको प्रवेश की अनुमति है? राजा को भी आश्चर्य हुआ, ऐसा कौन-सा भाई है! चलो, बुलाओ उसे दरबार में। उसके फटे हाल को देखकर राजा भोज को भी आश्चर्य हुआ। राजा ने पूछा - भाई, यह तो बताओ कि तुम मेरे भाई कैसे हो? उस दरिद्र ने कहा - राजन्! सुन लो।

सम्पदा तव मातासि आपदा मम मातासि।

आपत्सम्पत्तौ भगिन्यौ स्यात् तस्मादहं भ्रातास्मि ॥

उसने कहा - राजन्! आपदा मेरी माता है और आपकी माता सम्पदा है, दोनों बहिनें हैं। इसलिये हम दोनों मौसरे भाई हैं।

बात यथार्थ है। अनुकूलता हो या प्रतिकूलता, आपत्ति हो या सम्पत्ति, ये दोनों कर्म की परिणति हैं, इसलिये ये दोनों भाई-भाई हैं। इसलिये आप आपत्ति में भी प्रसन्न रहिये और सम्पत्ति में भी प्रसन्न रहिये। मुस्कुराते रहिये। आपके जीवन में परम आनन्द ही आनन्द होगा। जैसे फूल काँटों के मध्य में घिरे रहने के बाद भी मुस्कुराते रहते हैं। यही जीवन की सबसे बड़ी कला है। सब प्रकार की विपरीतता में भी अपने मन की प्रसन्नता को टिकाये रखना। कामयाब केवल वे ही होते हैं। सब प्रकार की प्रतिकूलता में भी अपने मन को प्रसन्न रखने में यदि आप सक्षम हैं

तो आपसे बड़ा कामयाब संसार में कोई दूसरा नहीं। और सब प्रकार की अनुकूलताओं के बीच भी यदि आपके मन की प्रसन्नता क्षीण हो गयी तो संसार में आपसे ज्यादा विफल दूसरा कोई नहीं है। वस्तुतः प्रसन्नता ही हमारी सफलता का असली स्वरूप है।

नज़रिया सहनशीलता का

एक विचारक ने बहुत अच्छी बात लिखी - तुम्हारे पास दो पैसे हों, तो एक पैसे से खरीदो एक फूल और दूसरे पैसे से खरीदो रोटी। रोटी तुम्हें जिंदगी देगी और फूल देगा तुम्हें जीने की कला।

यही सबसे बड़ी कला है कि सब प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने मन को प्रसन्न बनायें। अनुकूलता आये तो या प्रतिकूलता आये तो, ठीक है दोनों आये हैं। कर्म के योग से आये हैं, मैं इनसे प्रभावित क्यों होऊँ ? अगर कोई परिस्थिति आयी है तो उससे बचने का रास्ता निकालना तो फिर भी बुद्धिमानी मानी जायेगी, किन्तु उसमें उलझ जाना केवल बेबकूफी ही कहलायेगी।

जब भी आपके जीवन में कोई भी प्रतिकूल निमित्त आये, तो देखिये कि उसे बदला जा सकता है कि नहीं। यदि बदला जा सकता है, तो बदलने का उपाय कीजिए। और यदि ऐसा लगता है कि इसे बदलना नामुमकिन है तो उसे स्वीकार लीजिए। अपने मन को बदल लीजिए, अपने दृष्टिकोण को बदल लीजिए। आपको परम शान्ति मिलेगी। अन्यथा आपके दिमाग पर अनावश्यक चिन्ता का बोझ चढ़ेगा और सारे जीवन को ही बोझिल बना देगा। इसलिए बन्धुओं निश्चिन्तता के नजरिये को अपनाइये और बोझिल जिंदगी से मुक्ति पाइये। निश्चिन्तता का यही मार्ग है।

जीवन की वास्तविकता को समझना। अनुकूलता और प्रतिकूलता यह जीवन की नियति है। इससे कोई बच नहीं सकता। व्यक्ति को सदैव अनुकूलता नहीं रहती और सदैव प्रतिकूलता भी नहीं रहती। इसलिये हम भगवान से प्रार्थना करते हैं -

**होकर सुख में मग्न न फूलूँ, दुःख में कभी न घबराऊँ,
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में सहनशीलता दिखलाऊँ।**

इन पंक्तियों का अर्थ यदि आत्मसात् कर लिया तो हमने जीवन का बहुत बड़ा सार पा लिया। इसी में जीवन का रहस्य है।

जीवन में सुख में मग्न होकर हम फूलें नहीं और दुःख में घबरायें नहीं। लेकिन क्या करें, हम लोग हैं जो सुखपूर्ण स्थिति में फूल जाते हैं और दुःख आता है तो कूलने लगते हैं, कराहने लगते हैं। एक में हमारा मन खिल जाता है और एक में मुरझा जाता है। पल में हम प्रसन्न होते हैं और पल में खिन्न होते हैं। यही खिन्नता और प्रसन्नता हमारे चित्त में अनावश्यक तनाव को उत्पन्न करती है। हमें चिन्तारूढ करती है, जिससे हमारे जीवन के विकास का मार्ग अवरूद्ध हो जाता है। हम स्वयं एक घेरे या जाल में उलझा हुआ महसूस करते हैं। इनसे मुक्ति का मार्ग यही है कि जो जैसा है उसे स्वीकार लें। यदि स्थिति नहीं बदल पा रही है, परिस्थितियाँ जटिलतम हैं, उन्हें बदल पाना संभव नहीं दिखता तो आप अपनी दृष्टि को बदल लीजिए। परिस्थितियाँ तो आपके हाथ में नहीं हैं पर आपकी दृष्टि तो आपके ही हाथ में है। दृष्टि को बदलना बहुत सरल है और परिस्थिति को बदलना बहुत कठिन है। यदि व्यक्ति की दृष्टि में परिवर्तन हो जाता है तो विपरीततम परिस्थिति भी उसके लिये अनुकूल हो जाती है। फिर अनुकूलता और प्रतिकूलता ज्यादा मायने नहीं रखती।

उसका नज़रिया ऐसा बनता है कि विपरीत परिस्थितियों को भी अपने रूप में ढाल लेता है। इसलिये जब-जब विपरीत परिस्थिति आये, आप अपने दृष्टिकोण को बदलने का प्रयास करें। चिन्ता से मुक्ति का यह बड़ा प्रबल उपाय है।

यह भी चला जायेगा इकदिन

देख लीजिए, घबराइये नहीं। ऐसा होता है, चला जायेगा। कितनी भी ऐसी स्थिति रहे, परन्तु यही सोचिये कि थोड़ी देर की और बात है। ज्यादा देर टिकने वाली नहीं है। नष्ट हो जायेगी, बीत जायेगी। यदि यह बात आपके मानस में स्थापित हो जाती है तो आपका चित्त ज्यादा प्रभावित नहीं होगा। फिर चिन्ता

आपको बेचैन नहीं करेगी। आपके मन की शान्ति फिर खण्डित नहीं हो सकती। जीवन में कितनी भी विषम घड़ी क्यों न हो, आपके मन की समता टिकी रहेगी।

एक राजा था। एक बार उसे किसी संत के दर्शन का सौभाग्य मिला। संत बहुत पहुँचे हुए थे। राजा ने उनसे कहा - गुरुदेव ! मुझे कोई ऐसा मन्त्र बताइये, जो मेरे जीवन में काम आ सके।

राजा की बात सुनकर संत मुस्कराये और कहा - राजन् ! मैं तुझे आज एक मन्त्र देता हूँ, जो मुझे मेरे गुरु ने दिया था। मैंने आज तक उसका उपयोग नहीं किया, शायद तुम्हें काम आ जाये। पर इस मन्त्र को तुम तब याद करना, जब तुम अपने आपको बहुत ज्यादा विपत्तियों से घिरा महसूस करो। जब तुम्हें ऐसा लगने लगे कि मैं बहुत ज्यादा संकटों से घिरा हूँ, तब तुम इस मन्त्र का उपयोग करना।

राजा ने प्रसन्नता व्यक्त की। संत ने अपनी बाँह में बाँधी स्वर्ण की ताबीज को राजा को सौंप दिया। राजा ने अपनी बाँह में बाँध दिया। संत ने दुबारा याद दिलाया - सुनो, इसका उपयोग तुम तभी करना, जब तुम बड़ी से बड़ी विपत्ति में घिरे हो।

जीवन सदैव एक-सा नहीं चलता। यही स्थिति राजा के साथ हुई। अचानक परचक्र ने हमला बोल दिया। अप्रत्याशित हमले से राजा अपने आपको बचा नहीं सका। उसे अपना राज्य छोड़कर घोड़े पर सवार हो भागना पड़ा। पीछे से विरोधी सैनिक उसका पीछा कर रहे थे। भागते-भागते वह वहाँ पहुँचा, जहाँ से आगे देखने पर रास्ता बंद समझ में आ रहा था। सामने बड़ी पहाड़ी थी। क्या किया जाय ? कुछ समझ में नहीं आता था। बगल में मुड़कर देखा तो एक गुफा दिख गयी। वह चुपचाप वहाँ चला गया।

कुछ देर बाद उसे पीछे से आने वाले सैनिकों के घोड़ों के टापों की आवाज सुनाई देने लगी। वह सोचने लगा कि अब तो मृत्यु ही मेरे लिये शरण हो सकती है। इसके अलावा कोई सहारा नहीं। मेरी मौत सुनिश्चित है। तभी उसे संत की बात याद आयी। उसने उस ताबीज को खोला। उस स्वर्ण की ताबीज के भीतर एक भोजपत्र था, जिस पर लिखा था 'यह भी बीत जायेगा'। उसने पढ़ा, उसे एक

नई रोशनी मिली। सोचा सब ठीक है, कितनी बड़ी विपत्ति आयी है, अब जो होगा देखा जायेगा।

राजा चुपचाप बैठ गया। थोड़ी देर बाद घोड़ों की टापें बंद हो गयीं। जो विरोधी सैनिक थे वह रास्ता भूलकर कहीं और चले गये। जब सभी निकल गये, तो राजा वहीं गुफा में रहा। कुछ दिन बाद अपनी सेना को पुनः एकत्रित किया और फिर से हमला बोला। विजय पाकर अपने खोये हुए राज्य को प्राप्त कर लिया।

खोये राज्य को पाकर विजय का सेहरा बाँधे हुए जब वह अपने राज्य सिंहासन पर आरूढ हुआ तो फिर उसे अपने गुरु के द्वारा दिये गये मन्त्र का स्मरण हो आया। उसने ताबीज को फिर खोलकर देखा। पुनः पढ़ा - यह भी बीत जायेगा। यहीं उसके अन्दर की चेतना जागृत हो उठी। मैंने अपने दुःख के दिन भोगे, वे भी बीत गये और सम्पदा व साम्राज्य मैंने पाया है यह भी बीत जायेगा। जब संसार का सब कुछ बीतने ही वाला है तब इस साम्राज्य को पाने से क्या मतलब। अब हमें जीवन के वास्तविक साम्राज्य को पाने का प्रयत्न करना चाहिए। इसी प्रेरणा से वह वन की ओर प्रस्थान कर गया।

बन्धुओ, मैं तो आपसे यही कहना चाहता हूँ कि जब ऐसी विषमता तुम्हें जकड़ने लगे तो सोचो, यह भी बीत जायेगा। दूसरा, जब अपने आपको उलझने में घिरा महसूस करो, तब आप सदैव सकारात्मक दृष्टि अपनाओ, नकारात्मक नहीं। सकारात्मक सोच एक प्रकार से बहुत बड़ा मन्त्र है। जो सकारात्मक सोच को अपनाते हैं वे जीवन में कभी विफल नहीं हो सकते। वे जीवन में कभी विफल नहीं होते। देखिए, जो कुछ भी हो रहा है, यदि वह उल्टा भी हो रहा हो तो अपने जीवन के हिसाब से सोचें। उसमें ज्यादा उलझें नहीं। ज्यादा उलझने से क्या फायदा। जो घट गया सो घट गया। सकारात्मक नजरिये का उदाहरण मैं आपको देना चाहता हूँ।

साथ न छूटे कभी धैर्य का

एक व्यक्ति ने अपने लिए मकान बनाया। उस मकान में हफ्ते भर बाद वह प्रवेश करने वाला था। किन्तु दुर्भाग्यवश आज ही मकान में आग लग गयी।

पूरा का पूरा मकान धू-धूकर जल गया, राख में परिवर्तित हो गया। जिसने भी सुना उसे बड़ा दुःख हुआ। इतना सुन्दर मकान, हफ्ते भर बाद उसे प्रवेश करना था आज खाक में परिवर्तित हो गया। उसके मित्रों एवं शुभचिन्तकों ने उसे सान्त्वना देना चाही। उन्होंने कहा - तुम्हारे जीवन में बहुत बड़ी आपत्ति आ गयी। कोई क्या कर सकता है! आप धैर्य रखें, हम लोग आपके साथ हैं।

उस व्यक्ति की सोच बहुत सराहनीय थी, उसने कहा - नहीं, मैं तो भगवान को बहुत-बहुत धन्यवाद करता हूँ कि आज से ठीक एक सप्ताह बाद मैं उस मकान में प्रवेश करने वाला था। अच्छा हुआ मकान में आज ही आग लग गयी। यदि यह आग एक सप्ताह के बाद लगी होती तो मेरा परिवार भी मकान के साथ राख हो गया होता। मकान तो पुनः बना लिया जायेगा, लेकिन परिवार तो दुबारा पैदा नहीं हो सकता। मैं भगवान का शुक्रगुजार हूँ कि उसने मकान को जलाया भी तो पहले जला दिया, मैं तो सुरक्षित हूँ। यह एक सकारात्मक दृष्टिकोण है।

मकान के जलने का दुःख नहीं, परिवार के बच जाने की प्रसन्नता है। ये केवल हमारे दृष्टिकोण पर निर्भर है। अपना नजरिया वैसा बना लें तो यह सब चीजें बहुत सहजता से प्राप्त कर सकते हैं। यदि ऐसा दृष्टिकोण विकसित नहीं करते तो हमसे ज्यादा दुःखी कोई नहीं हो सकता। तो आप सबसे कहना चाहता हूँ कि जब भी जीवन में विषमता हो, प्रतिकूलता हो तो चिन्ता मत करे, चिन्तन करें। चिन्तन से राह बनती है और चिन्ता से राह अवरुद्ध हो जाती है। चिन्तन से ही रास्ता निकलेगा। ठीक है धैर्य रखें।

विपदि धैर्यमथाभ्युदयक्षमः, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।

यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥

विपत्ति में धैर्य रखना चाहिए, यह नीति है। विपत्ति में धैर्य एक बहुत बड़ा अवलम्बन है। डाक्टर कहता है कि, धीरज कमजोर की ताकत है, और अधीरता ताकतवर की कमजोरी है। हमें कितनी भी विपत्ति आये हम उसका मुकबला करें। विपत्ति हथौड़ी के प्रहार की तरह है। हथौड़ी यदि काँच पर पड़ती है तो काँच चकनाचूर हो जाता है और वही हथौड़ी जब सोने पर पड़ती है तो सोना और अधिक चमक उठता है।

संत कहते हैं - महान् वह नहीं, जो विपत्ति के प्रहार में काँच की तरह चकनाचूर हो जाय। बल्कि महान् वे होते हैं जो विपत्ति के प्रहार से सोने की तरह दमक उठते हैं। अपने आपको सोने जैसे दमकाइये। विपत्ति के प्रहारसे व्यक्ति टूट भी सकता है और मजबूत भी होता है। जिसका नजरिया नकारात्मक होता है वह टूट जाता है और जिसका नजरिया सकारात्मक होता है वह और अधिक मजबूत हो जाता है। मजबूत होइये और अपने जीवन को आगे बढ़ाइये।

एक व्यक्ति को परिवार से अलग कर दिया गया, बिना कुछ दिये। भरे-पूरे परिवार से बिना कुछ दिये और बिना कुछ बजह अलग कर दिया गया। वह हँसते-हँसते निकल गया। उसके मित्रों ने कहा - तुम्हारे ऊपर विपत्ति आयी है। अब तुम्हें जीना बहुत मुश्किल हो सकता है। लेकिन उसने जो जबाव दिया उसमें बहुत बड़ा जीवनदर्शन छुपा हुआ था।

हवाओं के झोके से शाखा टूटी जरूर है पर मैं उसे सूखने नहीं दूँगा। कलम बनाकर मैं इसे स्वतन्त्र पेड़ बनाऊँगा। और देखना, यह पेड़ एक दिन बड़ा होगा, इसमें फूल लगेगे, फल लगेगे और सब लोग इसे देखकर आनन्दित होंगे।

शाखा टूटती है तो लोग सुखा डालते हैं, लेकिन समझदारी तो इसमें है कि शाखा को कलम बनाकर उसे धरती पर रोप दें, उसमें फूल और फल आते हैं। आपके जीवन में जब भी ऐसी स्थिति बने तो घबराइयें नहीं, यदि तुम्हारी तकदीर तुम्हारे साथ है, तुम्हारा चिन्तन ठीक है, कार्य करने की शैली ठीक है, तो उसके परिणाम अपने आप आयेंगे। जमीन से आदमी शिखर पर चढ़ जाता है और शिखर पर चढ़े आदमी को जमीन पर आने में देर नहीं लगती। बन्धुओ, यह तो संसार का नियम है। वास्तविकता को समझें। अपने जीवन को चिन्ता से मुक्त होकर जीने का अभ्यास बनाइये। जीवन का आनन्द तभी पायेंगे।

क्रिया की प्रतिक्रिया

दूसरी बात हम बहुत ज्यादा प्रतिक्रियाओं में जीते हैं। कुछ भी हुआ, क्रिया होती है तो प्रतिक्रिया होती है। कुछ भी घटा, तो उसने हमारे चित्त पर उभार पाया। जैसे किसी ने कुछ कहा, तो अच्छा उसने ऐसा कहा। ऐसा कहता

है। उसने मेरे लिये अपशब्द कह दिये, कहा - गधा है। अच्छा, क्या समझ रखा है। सामने वाले ने तो एक बार गधा कहा, पर आपने अपने आपको कितनी बार गधा बना लिया।

ध्यान रखिए, जितनी आप प्रतिक्रियायें करोगे उतनी अशान्ति आमन्त्रित करोगे। प्रतिक्रियाओं से अशान्ति को आमन्त्रण मिलता है, इसलिये प्रतिक्रियाओं से विरत होइये। व्यर्थ की प्रतिक्रियाओं से बचिये और नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ तो करिये ही नहीं। अनावश्यक अशान्ति कभी नहीं होगी। जितना बने सकारात्मक तरीके से जीइये। कई-कई बार प्रतिक्रियाओं का बहुत बड़ा विपरीत असर पड़ता है।

अमेरिका के एक व्यक्ति थे अण्डरसन। उनको बाईस वर्ष के उम्र में क्षय रोग हो गया। वह उस जमाने का क्षय रोग है, जब टी० बी० बहुत घातक रोग समझा जाता था। उनकी स्थिति बहुत गम्भीर हो गयी। वह युवा अपने जीवन से हताश हो गया कि अब मुझे मरना पड़ेगा। एक दिन एक बुजुर्ग वहाँ पहुँचे। उनसे उसकी स्थिति को देखा। उसे समझाते हुए कहा - सुनो, तुम युवा हो, तुम्हारी बीमारी का तो इलाज है, पर दिमागी बीमारी का इलाज नहीं है। इसलिये मैं तुमसे यह कहना चाहता हूँ कि तुम्हारी दिल की बीमारी को तुम दिल तक सीमित रखो, उसे दिमाग तक न पहुँचने दो। यदि तुम उसे दिमाग तक पहुँचा दोगे तो वह कभी ठीक नहीं होगी। उस बुजुर्ग का इतना कहना था कि उसकी चिन्तन की धारा बदली। और उसने तय कर लिया कि तन की बीमारी को मुझे मन पर हावी नहीं होने देना है। किसी भी तरह से अपने तन की बीमारी को मन पर हावी नहीं होने देना है। तब से उसे धीरे-धीरे स्वास्थ्य लाभ होने लगा। आगे चलकर वही अमेरिका का मंत्री बना।

यह एक नजरिया है। जब कभी ऐसी बातें आये तो हम उससे प्रभावित न हों। तटस्थ होकर जियेंगे तो अनावश्यक चिन्ता हमारे सिर पर कभी सवार नहीं होगी। उससे अपने आपको बचाने में बहुत अच्छे से समर्थ हो जायेंगे।

तीसरी बात है भय। भय हमारी चिन्ता का बड़ा सबल कारण है। मनुष्य

अनेक प्रकार के वास्तविक और काल्पनिक भयों का शिकार है। जब हमारे मन में भय छाता है तो आशंका जन्म लेती है और आशंका से चिन्ता का जन्म होता है। अरे, अब ऐसा होगा या क्या होगा? बेटा गया है, गाड़ी से गया, पता नहीं दुर्घटना न हो जाये। पहली बार प्लेन पर गया है, कोई दुर्घटना न हो जाय।

कई-कई बार ज्ञानी ऐसा कहते हैं कि जब हम अपने मन से अमंगल सोचते हैं तो हमारे अन्तरंग से निकलने वाली विचार की तरंगें सामने वाले को प्रभावित कर लेती हैं। और वह प्रभावित होने से हम जो सोचते हैं, वह घटित भी हो जाता है।

ऐसा न हो जाए, वैसा न हो जाए। ऐसी चिन्ताएँ करने से क्या फायदा? जो होना होगा सो होगा। गया है तो आ जायेगा। पर कुछ लोगों को ऐसी बीमारी होती है कि वह इस तरह की चिन्ता में अपना चैन नष्ट कर देते हैं। अपने आपको बचाइये, इस तरह के भय को एक तरफ रखकर। हमारी चिन्ता का एक अन्य कारण है अहं।

अहंकार के कारण भी बहुत सारी चिन्ताएँ होती हैं। बहुत प्रकार का फालतू तनाव है वह अहंकार के कारण ही होता है। सबसे बड़ा अहं है, **लोग क्या कहेंगे?** उसको मेंटेन करने के लिये आपको अनावश्यक चिन्ता और तनाव स्वीकार करने पड़ते हैं। लोग क्या कहेंगे? अरे, जो कहेंगे सो होगा। इस अहं से प्रेरित होकर जब व्यक्ति कृत्रिम जीवन जीना प्रारम्भ कर देता है तभी से जीवन का तानाबाना नष्ट होने लगता है। ये चिन्ताओं के उत्पन्न करने के कारक हैं। इन सारी स्थितियों में भी हम अपनी प्रसन्नता को टिका सकते हैं, यदि हम जीवन का दृष्टिकोण परिवर्तित कर लें तो।

चिन्ता से बचने के कुछ उपाय मैं आपको बता रहा हूँ। यदि आप इनको आत्मसात् करें, तो आपके चित्त पर कभी भी चिन्ताएँ सवार नहीं होंगी। सबसे पहली बात आप यह सोचिये, जो होना होता है वही होता है। दूसरी बात, जो होता है सही होता है। करने से पहले विचार कर लीजिये, करने के बाद ज्यादा विचार करने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि जब होना है सो होगा। देखेंगे।

हालाँकि ये दोनों बातें अर्धसत्य हैं। इसे पूरी तरह सत्य मानकर ऐसा नहीं करना, कि गाड़ी में बैठ गये और आँख मूँदकर गाड़ी ड्राइव करना और कहना महाराज ने कहा - जो होना होगा सो होगा। जो होना होता है वह सही होता है। ऐसा हमने सोच लिया। किसी के बेटे का एक्सीडेंट हुआ और उसका जवान बेटा मर गया। आप वहाँ साँत्वना और संवेदना व्यक्त करने गये, और कह दिया महाराज ने कहा - जो होना होता है वह सही होता है। तुम्हारा बेटा सही मरा। ऐसा नहीं करना। यह अर्धसत्य है। ये चित्त के समाधान के लिये भायी जाने वाली भावनायें हैं।

निरर्थक होता नहीं यहाँ कुछ

जब हम कुछ कर लें और करने के बाद उसके परिणाम पूरी तरह से स्पष्ट न हों तब हम कहें - जो होना होता है वही होता है। जो होना होगा सो होगी। ज्यादा चिन्ता अपने मन में मत लीजिए। हमने काम कर लिया अब जो रिजल्ट आयेगा तब देखेंगे। हम व्याकुलता क्यों करें ?

यदि कुछ काम हम करें और उसका अंजाम अनुकूल नहीं है तो हम कहें जो होता है सही होता है। अच्छे के लिये होता है। ऐसा मानना हम शुरू कर दें तो बहुत कुछ परिवर्तन घटित होना शुरू हो सकता है और अनावश्यक चिन्ताओं के बोझ से अपने आपको बचा सकते हैं।

एक राजा था, अचानक उसके हाथ की अंगुली कट गयी। वहीं उसका मन्त्री खड़ा था। अंगुली कटने पर राजा को समझाते हुए मन्त्री ने कहा - राजन् ! आप घबराइये नहीं, जो होता है सही होता है।

राजा तमतमा गया। यह भी कोई बात हुई। मेरी अंगुली कटी और तुम कह रहे हो सही हुआ ! अंगुली कटना सही होता है क्या ? उसने अपने मन्त्री को कैद कर दिया।

महिने भर बाद राजा जंगल में शिकार करने के लिये गया। वह अपने साथियों से बिछुड़ गया। अचानक वह आदिवासियों के गिरोह से घिर गया। उस दिन आदिवासी अपने अन्धविश्वासों से प्रेरित होकर एक अनुष्ठान कर रहे थे, उसमें उन्हें नरबलि देनी थी। उन्हें किसी हृष्ट-पुष्ट मनुष्य की आवश्यकता थी।

उन्हें राजा जैसा व्यक्ति मिल गया, जो उपयुक्त था। उसे पकड़ लिया गया और उसे बलि की वेदी पर चढ़ा दिया गया। उनका पुरोहित आया, उसने देखा। अब क्या है ? बलि दी ही जाने वाली थी कि उस पुरोहित ने कहा - बलि देने से पूर्व जाँच की जानी चाहिए कि बलि दिये जाने वाले में किसी प्रकार की कमी तो नहीं है। जब राजा की जाँच की गयी तो उसकी अंगुली कटी पाई गयी। पुरोहित ने कहा - यह आदमी काम का नहीं है, इसे छोड़ दो।

जैसे ही उसे छोड़ा गया, वैसे ही उसे मन्त्री का वाक्य याद आया, जो होता है अच्छे के लिये होता है। वह सीधा आया और मन्त्री को मुक्त करा दिया। अपने दरबार में कहा - मन्त्री तुमने बिलकुल ठीक कहा था। जो होता है वह अच्छे के लिये होता है। तुम्हारी बात बिलकुल सही है। लेकिन मुझे एक बात समझ में नहीं आयी कि मेरी अंगुली का कटना तो अच्छे के लिये हुआ, पर तुम्हारा यह कहना कि जो होता है अच्छे के लिये होता है, तुम्हारे लिये सही कैसे हुआ ?

मन्त्री ने कहा - महाराज, मेरे लिये भी सही हुआ। नहीं तो मैं बलि का बकरा बना होता। यदि मैं यह बात नहीं कहता, तो आप मुझे कैद में नहीं रखते, और कैद में नहीं रखते तो आप मुझे भी शिकार के लिये साथ ले जाते।

आप तो कटी अंगुली के कारण बच जाते और मुझे बलि पर चढ़ना पड़ता। इसलिये जो होता है वह अच्छे के लिये होता है। बहुत बड़ा सूत्र है जीवन में, उसको अपनाइये। जो होना होता है वही होता है। वही होता है जो होना होता है। यह बात यदि ध्यान में रखते हैं तो दिमाग से चिन्ता का बोझ दूर हो जायेगा और आनन्द की दुंदुभि गूँजेगी। चैन की नींद सोने का अवसर आपको प्राप्त होगा।

सुख-दुःख में समभाव रहे

दूसरी बात, संतुष्टि का जीवन जियें। व्यर्थ की आकांक्षाओं से बचें। जितना मिला जो मिला उससे संतुष्ट रहें। मिल गया तो गुमान नहीं, खो गया तो गम नहीं। पाने में प्रसन्नता नहीं और खोने में खिन्नता नहीं। आपके सिर पर चिन्ता कभी सवार ही नहीं होगी। अच्छा हुआ तो भी और बुरा हुआ तो भी। हो रहा है तो हो जाने दो, निकल जायेगा। उसको लेकर के ज्यादा चिन्ता करने की क्या बात

है। सुख आये तो भी, दुःख आये तो भी, लाभ हो तो भी और नुकसान हो तो भी, दोनों में यदि संतुष्टि का भाव आपके मन में जगा रहे तो आपके सिर पर चिन्ता कभी सवार नहीं होगी।

आपके घर में अलग-अलग मेहमान आते हैं। मान लीजिए आपके ताऊजी या चाचा जी आये और आपका दामाद भी आया। ताऊ या चाचा की खातिरी में ज्यादा प्रबन्ध करने की जरूरत नहीं पड़ती। दो सब्जी बना लिया या थोड़ा सा प्रबन्ध कर लिया तो वह संतुष्ट होकर चले जाते हैं। लेकिन जब दामाद आता है तो एक्सट्रा इंतज़ाम करना पड़ता है। और अन्तर देखिए। यदि ताऊ या चाचा आते हैं तो इंतज़ाम करने में ज्यादा कुछ करना नहीं होता और जब वे जाते हैं तो सौ-पचास देकर जाते हैं। लेकिन दामाद महोदय आते हैं तो सब इंतज़ाम भी करना पड़ता है, और टीका भी करना पड़ता है। आप दोनों में प्रसन्न रहते हैं। मैं आपसे इतना ही कहना चाहता हूँ कि जीवन में सुख आये तो समझ लेना चाचा आये हैं और दुःख आये तो समझ लेना दामाद आये हैं। जीवन का आनन्द इसमें है, सदैव संतुष्टि को बनाये रखने का इससे बड़ा सूत्र कोई नहीं हो सकता।

जीना वर्तमान में चिन्तायें भविष्य की

व्यर्थ की आकांक्षाओं में न उलझे, व्यर्थ की चिन्ताओं से अपने आपको बचायें। आप देखिये, आपके चित्त पर जो चिन्ताएँ सवार होती हैं, अनावश्यक ज्यादा होती हैं। लोग रोटी की चिन्ता कम करते हैं, पेटी की ज्यादा। रोटी की चिन्ता में हैरान होने की जरूरत नहीं, पेटी की चिन्ता में हैरान होना होता है। आचार्यश्री कहते हैं कि रोटी का माप है, क्योंकि सबके पेट की एक सीमा है। प्रकृति ने एक पैमाना बना रखा है, लेकिन पेटी का कोई पैमाना नहीं। पेट लगभग एक सीमा का होता है और पेटी सबकी अनलिमिटेड साइज की होती है।

जो अनावश्यक तनाव होता है, वह मनुष्य को हृदय से ज्यादा परेशान कर डालता है। आज जैसा विजनेस के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा का वातावरण बना है। उसके कारण व्यक्ति को बहुत ज्यादा टेंशन होता है। किसी भी तरह कारोबार में ऊँचा-नीचा आता है तो व्यक्ति एकदम तिलमिला उठता है।

एक उद्योगपति ने मुझसे कहा - महाराज, बाकी बातें तो समझ में आ जाती हैं, लेकिन जब फाइनेसियल ग्राफ ऊपर-नीचे होने लगता है तो रात की नींद चली जाती है। उसमें भी आप देखिए। आप कितना ज्यादा अपने आपको इन्वॉल्व कर लेते हो, और जरूरत से ज्यादा अपने को उलझा देते हो।

एक आदमी अपने मित्र के यहाँ गया, वह होटल का कारोबार करता था। काफी भीड़ थी, लेकिन देखा उसका मित्र काफी उदास दिख रहा है। उसने पूछा - क्या बात है, आज काफी उदास दिखाई पड़ रहे हो ? बोला - क्या बताऊँ, आजकल मन्दी का दौर चल रहा है। इसलिये मन ही नहीं लगता।

वह कहता है - मैं दो घण्टे से देख रहा हूँ पूरा हाउसफुल है, पचास ग्राहक लौट गये हैं, फिर भी आप कह रहे हैं मन्दी का दौर है। हाँ, इसीलिये तो कह रहा हूँ, कल तक सौ लौटते थे, आज पचास लौटे हैं। इसका मतलब मन्दी का दौर प्रारम्भ है।

इस प्रकार की जो चिन्ताएँ हम ओढ़ लेते हैं, इनसे बचिये। हमेशा संतुष्टि का भाव रखिये। अपने कर्म के संयोगों पर विश्वास रखिये। यह ध्यान रखिये, मनुष्य को उसकी तकदीर से ज्यादा कुछ नहीं मिलता। जो मिलता है, हमें उसमें ही संतुष्ट रहना पड़ता है। तब चिन्ताओं से अपने आपको बचाये रख सकते हैं। हमेशा मुस्कुराना सीखिये। अपने मन को प्रसन्न रखिये। आपके मन में कभी तनाव हावी नहीं होगा। सुबह उठते ही आँख खोलिये और भगवान का स्मरण करते हुए जी भरकर मुस्कुराइये। आपका चेहरा कैसा होना चाहिए ? आपके चेहरे पर वैसी ही मुस्कान होना चाहिये, जैसी कि टी० व्ही० पर न्यूज सुनाने वाले के चेहरे पर होती है।

यद्यपि वह कृत्रिम मुस्कान है। आपकी मुस्कान में वास्तविकता होनी चाहिए। हमेशा मुस्कुराइये, अपनी मुस्कान को किसी भी तरीके से प्रभावित नहीं होने दीजिए। आपके चित्त पर चिन्ता कभी सवार नहीं हो सकेगी। आप अपने जीवन का उद्धार करने में समर्थ हो सकोगे। ये कुछ छोटी, छोटी-सी बातें हैं।

जिनको यदि हम आत्मसात् कर लें तो चित्त से चिन्ता को पूरी तरह से दूर कर सकते हैं।

बन्धुओ, जैसे अनाज में घुन लगता है, तो अनाज नष्ट हो जाता है। चिन्ता भी ऐसा घुन है, जो हमारी चेतना को खोखला बना देती है। व्यर्थ में ही सबकुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। इसलिये उससे बचने का उपाय कीजिए। स्वयं को जागरूक बनाइये। और यह देखने का प्रयत्न कीजिये कि मेरे अन्दर की प्रसन्नता कहीं से प्रभावित होने न पावे। वह सदैव बरकरार बनी रहे। यदि उसके बनाये रखने में हम समर्थ होते हैं तो हमारे जीवन में सब कुछ घटित हो सकता है। अन्यथा व्यर्थ की चिन्ताओं में तो हम उलझते ही रहते हैं।

बन्धुओ, चिन्तन कीजिये। चिन्तन से जीवन की एक नयी धुन पैदा होती है। जो हमारे जीवन में लय उत्पन्न करती है। और यदि चिन्ता करेगे, तो वह जीवन को खोखला बना देगी।

चिन्तामुक्ति के चार सूत्र

बन्धुओ, हमारा जीवन तानपूरे की तरह है। तानपूरे को देखा होगा, उसमें तार पूरे कसे रहते हैं, तो मधुरस्वर लहरी उत्पन्न होती है। किन्तु जो तानपूरे के स्वर को मिलाना नहीं चाहता, उसके लिये वह सिरदर्द बन जाता है। यदि हम अपने जीवन के तार को ठीक ढंग से कसकर रखते हैं और फिर उसमें हम अपनी अंगुलियों का स्पन्दन करते हैं तो तानपूरे की तरह उससे मधुर संगीत उत्पन्न होता है। यदि हम उसे ठीक ढंग से नहीं समझते तो हमारे जीवन का सारा ताना-बाना नष्ट हो जाता है। इसलिये मैं आप सबसे कह रहा हूँ कि चिन्ता से अपने आपको बचाना चाहते हैं, पहले तो **जो होता है सही होता है, जो होना होता है वही होता है**, इस पर अपना ध्यान रखिये।

दूसरी बात, जो मैंने आप सबसे कही, कि **मन में संतोष रखिये** संतुष्टि का भाव अपनाइये। तीसरी बात, **हमेशा मुस्कुराते रहिये** चौथी बात, जो सबसे महत्वपूर्ण है। वह है **वर्तमान में जीना सीखिये**। कल की चिन्ता को छोड़िये, आज हर मनुष्य वर्तमान को भूल जाता है। या तो वह अतीत की स्मृतियों

में उलझा हुआ होता है या फिर भविष्य की कल्पनाओं में। दोनों जंजाल हैं, अतीत की स्मृतियों से तुम्हें कुछ लाभ नहीं होने वाला और भविष्य की कल्पनाओं में उड़ने से तुम कुछ पाओगे नहीं। वस्तुतः जो कुछ पाया जाता है वह यथार्थ के धरातल से ही पाया जाता है, कल्पनाओं की उड़ान से नहीं।

कल्पना के आकाश में उड़ान भरने वाले कुछ भी नहीं पा पाते, पाते वे हैं जो यथार्थ की धरती पर चलते हैं। यथार्थ की धरती पर चलने में केवल वे ही समर्थ होते हैं जो वर्तमान में जीते हैं। संत कहते हैं - अतीत व्यतीत हो चुका है और भविष्य अभी आया नहीं है। तुम व्यतीत हुए अतीत और आने वाले भविष्य की चिन्ता में अपने आज को विफल मत करो। जो कल की चिन्ता में आज को विफल कर देता है, उसका कल कभी उज्ज्वल नहीं होता। कल को उज्ज्वल बनाना चाहते हो तो कल की चिन्ता छोड़ो। आज को ठीक बनाओगे तो कल जरूर ठीक होगा। आज हम अच्छे से जी लें, कल तो अपने आप अच्छा हो जायेगा। यदि आज अच्छे से नहीं जियेगे तो तय है कल भी अच्छा नहीं होगा।

हम ज्यादा आगे की चिन्ता न करें। कुछ होते हैं कि बहुत आगे की चिन्ता करते हैं। वैसे ही, जैसे वह सेठ था। उसके पास किसी चीज की कमी नहीं थी, पर रात को नींद नहीं आती थी। पत्नी ने पूछा - क्या बात हो गयी? बोला - क्या बताऊँ, मैंने हिसाब लगाया कि अपार सम्पत्ति है, इतनी सम्पत्ति कि सात पीढ़ियाँ शान्ति से जी सकती हैं। पत्नी ने कहा - यह तो बड़ी खुशी की बात है, इसमें तो हर्ष मनाना चाहिये। अरे पगली, ये तो ठीक है कि सात पीढ़ियाँ चल जायेंगी, पर आठवीं पीढ़ी का क्या होगा? इसकी तकलीफ है।

आठवीं पीढ़ी का क्या होगा? यह जो चिन्ता हमारे चित्त पर सवार होती है, बहुत खतरनाक है। जिसने हमें जन्म दिया वह हमें जीवन की व्यवस्था भी देगा। प्रकृति ने यदि जन्म दिया है तो हमें व्यवस्था भी दे दी है। बेटा जन्म लेता है, उसके जन्म लेते ही उसकी माँ के पेट में दो कटोरा दूध भी आ जाता है। जिस पल बेटे का जन्म होता है प्रकृति माँ के पास दो कटोरा दूध भी दे देती है। इसलिये ज्यादा चिन्ता मत करो, जो आज की व्यवस्था कर रहा है, वह कल की भी व्यवस्था कर

देगा। जिसने तुम्हें चोंच दी है, वह चुग्गा भी देगा। इसलिये क्या चिन्ता? जो होना है, ठीक है।

कुछ भविष्य की चिन्ता को दूरदर्शिता कहते हैं। बन्धुओ, मेरे दृष्टि में वह दूरदर्शिता नहीं, दुःखदर्शिता है। भविष्य के प्रति अपेक्षित सावधानी को कदाचित् दूरदर्शिता कहा जा सकता है। लेकिन भविष्य की चिन्ता में अपने आपको उलझा देना केवल दुःखदर्शिता की पहचान है।

दूरदर्शी बनिये। इसका मतलब यदि हम गाड़ी चला रहे हैं तो कहीं कोई एक्सीडेंट न हो जाय, आगे कोई खाई-खंधक न हो, उसे देखकर गाड़ी चलाना, यह तो दूरदर्शिता है। लेकिन उसे न देखकर आगे के हजार मील की सोचना ये दुःखदर्शिता ही है। दूरदर्शी होने का मतलब कोई संकट न आये, कोई विप्लव खड़ा न हो, इसकी सावधानी रखना और दुःखदर्शी होने का मतलब वर्तमान में असावधान होकर केवल भविष्य की चिन्ता में उलझकर रह जाना। ऐसे व्यक्ति अपने जीवन में कभी कामयाब नहीं हो सकते। यदि उस कामयाबी को पाना चाहते हैं तो वर्तमान में रहना सीखिये। ये कुछ छोटी-छोटी सी बातें हैं, जो हमें चिन्ता से मुक्त होने की प्रेरणा देती हैं। यदि हम उनको आत्मसात् करते हैं तो हमारा जीवन बेहतर बनता है, सुन्दर बनता है। और तभी हम अपने जीवन का वास्तविक आनन्द उठाने का सौभाग्य पा सकेंगे।

बन्धुओ, जीवन तो सभी का होता है, आते हैं और चले जाते हैं। लेकिन अकसर लोग अपने जीवन के मूल तत्त्व को नहीं पहचान पाते। वे व्यर्थ की चिन्ताओं में दबकर रह जाते हैं। जीवन आकुलता से जीने के लिये नहीं, अपितु जीवन का रस पाने के लिये है। जीवन को ऐसे ही न जियें, आनन्द से जियें। कुछ लोग हैं जो जीवन को गुनगुनाते हुए जीते हैं, और कुछ लोग हैं जो चिन्ता में भुनभुनाते हुए जीते हैं। आप गुनगुनाते हुए जी रहे हैं या भुनभुनाते हुए? यदि आपके जीवन में चिन्तन की प्रधानता है तो आपके जीवन में मधुर गीत गुनगुनायेंगे। और यदि चिन्त पर चिन्ता हावी है तो सदैव भुनभुनाते ही रहोगे। यह आपके ऊपर है आप कैसा जीना चाहते हैं। आप धुएँ की तरह जीना चाहते हैं या ज्योति की

तरह। जैसा आपका अपना दृष्टिकोण होगा, जैसी जीने की शैली होगी वैसा ही आप जी सकेंगे। यदि जीवन का रस पाना चाहते हैं तो जीवन के स्वरूप को समझें। जीवन को गुनगुनाते हुए जियें। अपने जीवन में चिन्तन को प्रधानता दें, चिन्ता को नहीं। क्योंकि चिन्ता चिन्ता के समान है। चिन्ता में तो आदमी केवल एक बार जलता है परन्तु चिन्ता सारी ज़िन्दगी जलाती रहती है। चिन्ता मरने के बाद जलाती है, चिन्ता जीते जी जलाती है। इस बात को हम अपने दिल-दिमाग में बैठायें और व्यर्थ की चिन्ताओं से अपने आपको बचायें। तब हम अपने जीवन का सच्चा लाभ ले सकेंगे।

संत कहते हैं - संसार की सारी व्यवस्थायें अपने-अपने अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों पर निर्भर करती हैं, तुम्हारे ऊपर नहीं। यह तो तुम्हारा अहंकार है, यह तो तुम्हारे भीतर का कर्तृत्व का भाव है। जब तक तुम इस कर्तृत्व के भाव से घिरे रहोगे तब तक तुम अपने जीवन का मार्ग प्रशस्त करने में सक्षम नहीं हो सकोगे। यही समयसार है, कर्तृत्व के अहंकार से मुक्त होइये। हर स्थिति में समता के अभ्यासी बनिये। जो कुछ भी हो, अनुकूल हो या प्रतिकूल, दोनों को सहजता से स्वीकार कीजिये, इसी में जीवन का सारा रहस्य है। इसी में जीवन का सार है। यही मैं अपनी वाणी को विराम दे रहा हूँ।

सुख में होकर मग्न न फूलें

सबको नाच नचावें कर्म

संसार में हम जहाँ भी दृष्टि दौड़ाते हैं, तो हमें विविधता और विषमता दिखाई पड़ती है। जीवन में जब कभी हम झाँक कर देखते हैं तो जीवन में भी एक रूपता नहीं दिखती। संसार में विषमता है और जीवन में विविधता। कोई गरीब है तो कोई अमीर। कोई सुखी है, तो कोई दुखी। कोई रूपवान् है तो कोई कुरूप। कोई संपन्न है तो कोई विपन्न। कोई राजा है तो कोई रंक। कोई विकलांग है तो कोई सकल संपन्न।

संसार में हमें ऐसे बहुत से दृश्य दिखाई पड़ते हैं, जिनके पास किसी भी चीज का अभाव परिलक्षित नहीं होता। और बहुत से ऐसे भी दिखाई देते हैं जिनका सारा जीवन ही केवल अभावों से घिरा हुआ है। कहीं एकरूपता नहीं दिखाई देती। कई मनुष्य ऐसे हैं जो मनुष्य होकर स्वर्ग के सुख भोग रहे हैं और कई मनुष्य ऐसे हैं जो पशुओं से भी बदतर जीवन जीने को मजबूर हो रहे हैं। जीवन में जब कभी हम झाँक कर देखते हैं तो कभी आशा, कभी निराशा, कभी प्रसन्नता, कभी खिन्नता, कभी हर्ष, कभी विषाद, कभी आनन्द, कभी आक्रोश, कभी उत्सव, कभी उदासी दिखाई देती है। जीवन में पल-पल परिवर्तन होता रहता है। हमारे परिणामों में कभी एकरूपता नहीं दिखाई देती। संसार में भी विचित्रता ही दिखाई देती है। आखिर इसका क्या कारण है? ऐसा कौन सा कारण है जो संसार में विचित्रता को जन्म देता है? ऐसा कौन-सा हेतु है जिसके कारण हमें जीवन में एक रूपता नहीं दिखती। हमेशा अस्थिरता बनी रहती है। कभी ठहराव नहीं होता।

भारतीय तत्त्वचिन्तकों ने इस कारण की मीमांसा की। खासकर जैनदर्शन

में जैन कर्मवाद का जो पल्लवन हुआ और वे बहुत गहरे तक गए। उन्होंने एक ही जबाब दिया कि संसार की विषमता का कारण मात्र कर्म है। अन्य कोई कारण नहीं है। यह कर्म किसी दूसरे के द्वारा किया हुआ नहीं होता है। वह तो हमारे ही द्वारा किया हुआ है।

अपने कर्मों के हम निर्माता

मनुष्य प्रत्येक पल जैसी प्रवृत्ति करता है, वैसे ही उसके परिणाम उसके जीवन में जुड़ते हैं, और वे ही कालान्तर में शुभ और अशुभ फल के रूप में हम सबको प्राप्त होते हैं। जब हमारी प्रवृत्ति अनुकूल होती है तो उसका परिणाम अनुकूल मिलता है और जब प्रवृत्ति विपरीत होती है तो उसका परिणाम विपरीत होता है। प्रत्येक प्राणी के पास तीन मौलिक स्थितियाँ हैं - मन, वाणी और शरीर। मन से आप विचार करते हैं। वाणी से बोलते हैं और शरीर से क्रिया करते हैं। इन मन, वाणी और शरीर की प्रवृत्ति के निमित्त से एक विशेष प्रकार का कम्पन होता है, वॉयब्रेशन होता है। उसके निमित्त से हमारे इर्द-गिर्द जो कर्म के पुद्गल हैं, वे हमारी ओर आकर्षित होकर कर्म के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। हमारी आत्मा के साथ वे स्थायी रूप से जुड़ जाते हैं। वे ही कालान्तर में अच्छा या बुरा फल प्रदान करने में समर्थ हो जाते हैं। अच्छा फल प्रदान करने वाले कर्मों को पुण्य नाम दिया गया है और बुरा फल प्रदान करने वाले कर्म को पाप कहा जाता है।

इस प्रकार पुण्य और पाप का सम्बन्ध हमारे जीवन में चौबीसों घण्टे जुड़ा रहता है। जैसी हमारी प्रवृत्ति होती है उसी के अनुरूप उसका परिणाम हमारे जीवन से जुड़ता रहता है। संसार के समस्त इष्टानिष्ट संयोग जो कुछ भी हमें देखने को मिलते हैं वे सब कर्मगत हैं। अतः कर्म से ही पीड़ित हैं, सब कर्मजनित हैं, कर्म से ही संचित होते हैं। कर्म ही जीव को संसार में अनुकूलताएँ प्रदान करता है और कर्म से ही जीव को प्रतिकूलताएँ मिलती हैं। कर्म ही हमें राजा बनाता है और कर्म ही रंक बनाता है। कर्म से ही हमें सुरूप मिलता है और कर्म से ही हमें कुरूप मिलता है।

बोये बीज बबूल के तो आम कहाँ से होय ?

मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसको वैसा ही फल मिलता है। हम कहते भी हैं कि जैसा कर्म करोगे फल भी वैसा ही मिलेगा। नीम बोने वालों को आम कैसे मिलेगे ? यह बात हम बार-बार शब्दों में दुहराते हैं।

संत कहते हैं - इसे दुहराने की जरूरत नहीं, इसकी प्रतीति करने की आवश्यकता है। कर्म और कर्म के फल पर विश्वास करने से हमें एक अलग रोशनी मिलती है, जिसके प्रकाश में हम अपने जीवन को समग्रता से जानने में सक्षम होते हैं, और उसके प्रकाश पर चलकर हम अपने जीवन का कल्याण कर सकते हैं। वस्तुतः बंधे हुए कर्म का फल तो हमें भोगना ही पड़ता है।

दो तरह के लोग हैं - एक अज्ञानता से प्रेरित होकर कर्म को भोगने वाले हैं और दूसरे वे हैं जो ज्ञानमूलक जीवन जीते हुए कर्म को भोगते हैं। जो अज्ञानता से ग्रसित होकर के कर्म को भोगते हैं उनका कर्मबंधन और-और अधिक बढ़ता जाता है। जो ज्ञानपूर्वक कर्म को भोगते हैं वे कर्म को भोगते हुए भी कर्म से अलिप्त बने रहते हैं। दोनों में बहुत अन्तर होता है। हमारे आचार्य कहते हैं जीवन को समग्रता से जानो और इस रहस्य को पहचान कर, कर्म की विचित्रता को जानकर शुभाशुभ, अनुकूल-प्रतिकूल, इष्टानिष्ट संयोग-वियोग में समता लाने का अभ्यास करो। अपनी प्रवृत्ति में नियन्त्रण रखो। अशुभ प्रवृत्ति से बचो और पूर्वकृत कर्म का जो फल हमें मिल रहा है उसे समता पूर्वक भोगने के लिए तैयार हो जाओ। समता से भोगोगे तो भी फल भोगना ही होगा और विषमता से भोगोगे तो भी भोगना ही होगा। दोनों स्थितियाँ हमारे साथ हैं।

हमें बचाये जागरूकता

संत कहते हैं - **कर्म बाँधते समय जागरूक रहो और कर्म भोगते समय समता रखो** यदि ये दो बातें हमारे जीवन में घटित हो गयी, तो हम कभी भी कर्म के चक्र से प्रभावित नहीं हो सकते। ऐसे कर्म और आत्मा का सम्बन्ध आज का नहीं है, यह तो अनादिकालीन है। अनादि से कर्म हमारी आत्मा पर हावी हो रहा है। इस कर्म के प्रभाव से हमारी आत्मशक्तियाँ पराभूत हो रही हैं। इससे ही

हमें भव-भव में पराभव का सामना करना पड़ रहा है। अनेक बार हमने दुर्गतियों का सामना किया। चार गति और चौरासी लाख योनियों में भ्रमण का मूल कारण कर्म है। कर्म ही जीव को परतन्त्र बनाकर संसार में भटकाता है। जब तक कर्म की सत्ता बनी रहेगी, तब तक हम इस संसार के भ्रमण से बच नहीं सकते। जितनी भी सिद्धात्माएँ हुई हैं, वे वही हुई हैं जिन्होंने अपने आत्म पुरुषार्थ के बल पर कर्म की सत्ता को उच्छेद किया। एक बार हम कर्म की सत्ता का अन्त कर दें तो संसार में परिभ्रमण करने की बात ही नहीं आती। लेकिन आपकी स्थिति तो उस कठपुतली की तरह है जो दूसरों के इशारे से नाचती है। कठपुतली को नचाने वाले अपनी अंगुली को चलाते हैं और उस कठपुतली को नाचने के लिए मजबूर होना पड़ता है। यही स्थिति आज संसारी प्राणी की है, जिसे कर्म कठपुतली की तरह नचा रहा है। कभी वह राजा बना देता है तो कभी रंक। कभी मनुष्य बना देता है तो कभी पशु। कभी देव बना देता है तो कभी दानव। कभी नारकी बना देता है तो कभी कीड़ा-मकोड़ा। कभी कीट-पतंग बना देता है, तो कभी पेड़-पौधा। यह सारा काम कर्म का है। जैसा नाच नचाता है वैसा ही नाच हम नाचते रहते हैं। और जब तक कर्म की शक्ति प्रबल होगी, तब तक हमारा यह भव-भव का नाच समाप्त नहीं होगा। उस नाच का अन्त अगर हम करना चाहते हैं तो अपने पुरुषार्थ को जागरूक बनाने की आवश्यकता है। ज्ञान पाने की आवश्यकता है। हम जानें कि हमारे शुभाशुभ कर्म आत्मा के साथ कैसे जुड़ते हैं ? और उनसे बचने का उपाय क्या है ? दो बातें अपने को ध्यान में रखना है, एक शुभाशुभ कर्म हमारे साथ जुड़े हैं, तो उनको भोगना ही पड़ेगा। हम लोग हैं जो कि अशुभ चाहते नहीं। कोई भी व्यक्ति अशुभ नहीं चाहता, किन्तु यह बात और है कि अशुभ क्रिया करने में पीछे नहीं रहते। पाप कोई नहीं चाहता, लेकिन पाप की क्रिया करने से कोई नहीं रुकता। हम पाप के परिणाम से तो बचना चाहते हैं, पाप से नहीं। पहली बात अगर हम बुराई से बचना चाहते हैं तो पहले हम बुरे कार्य से बचने की कोशिश करें।

जो बुरे कार्य से बचता है वही बुराई से बच सकता है। जो बुरे कार्यों में जुड़ा रहता है वह बुरे कार्य से बचने में समर्थ नहीं हो सकता। इसलिए हम अपने

आपको बुराई से बचाने का संकल्प लें। क्योंकि बुरे का फल बुरा ही होता है। अच्छे का फल अच्छा होता है। यदि हम अच्छा चाहते हैं तो अच्छा कर्म करना शुरू कर दें। आज शुरू करेंगे, तो आज से हमारे जीवन में अच्छाई का सूत्रपात होगा और कल करेंगे तो कल होगा। जब तक बुराईयाँ हमारे जीवन में हैं तब तक उनका फल तो हमें भोगना ही पड़ेगा। कहा जाता है -

नाभुक्तं क्षीयते कर्म

भोगना तो पड़ेगा ही

बिना भोगे कर्म का क्षय नहीं होता। जैसा हम करते हैं, वैसा ही हमें भोगने को मजबूर होना पड़ता है। इस पर विश्वास रखें और बुरे कार्यों से अपने आपको बचायें। लेकिन हमारे साथ एक बिडम्बना है कि हम पाप करने में तो नहीं चूकते, परन्तु पाप के फल से बचने की हमेशा कोशिश करते हैं। कैसे संभव होगा ? हम पाप की राह चल करके पुण्य की चाह करें, तो जीवन में सफलता कभी नहीं हो सकती। राम का नाम लें और रावण का काम करें तो उद्धार हमारा कभी नहीं हो सकता। यदि हम अपने जीवन को अनिष्टसंयोगों से बचाना चाहते हैं तो अपनी प्रवृत्ति को पहले से निर्मल बनाने का प्रयत्न करें। जब तक हमारे पल्ले में पुण्य नहीं होगा, तब तक संसार की अनुकूलताएँ कभी प्राप्त नहीं हो सकतीं। पुण्य अनुकूलता प्रदान करता है और पाप के निमित्त से प्रतिकूलताएँ आती हैं। आज हम सब बड़े भाग्यशाली हैं, सबके साथ पुण्य जुड़ा हुआ है, उस पुण्य के प्रभाव से अच्छा कुल पाया, अच्छा शरीर पाया, अच्छी बुद्धि पायी, सब प्रकार की अनुकूलताएँ हमने प्राप्त कर लीं, अब इन सबको पाने के बाद यदि प्रमाद करेंगे तो ये सब खो जायेगीं। आज हैं, कल रहें कोई जरूरी नहीं। जैसे कोई व्यक्ति अपनी गाँठ में कुछ पूँजी लेकर के आता है और यदि उस पूँजी के बढ़ाने के प्रयास में लगा रहता है तो उस पूँजी में वृद्धि होती है। यदि पूँजी को खा ले और गँवा दे, तो कल उसे कंगाली और बदहाली भोगने को मजबूर होना पड़ता है। आज तुम्हारे पास पूँजी है, कल रहे या न रहे। इससे पहले कि तुम्हारी पूँजी खाली हो, तुम उसे बढ़ाने का इंतज़ाम करो। पुण्य के योग से सब प्रकार की अनुकूलताएँ हमें प्राप्त हुई

हैं; तो हमारी क्रियायें ऐसी होना चाहिए जो पुण्य की अभिवृद्धि करने वाली हों। पुण्यानुबन्धी पुण्य की क्रिया करने वाले जीव ही अपने जीवन में कल्याण का अवसर प्राप्त कर पाते हैं। जिनके जीवन में ये बातें नहीं रहती, वे यूँ ही संसार में भटकते रहते हैं।

पहली बात हम पाप से डरें। और दूसरी बात पुण्य-शुभ की क्रियाओं से अपने आपको जोड़ने का प्रयत्न करें। जब तक हम वैसा नहीं करेंगे, तब तक हमारे जीवन में अच्छे परिणाम नहीं आ सकते। बन्धुओ, संसार की यह विचित्रता है कि हम सब कुछ बाहर से करते रहते हैं, लेकिन जैसे ही एक संयोग बदलता है तो पल में ही आदमी ऊपर से नीचे आ जाता है। और नीचे से ऊपर भी चला जा सकता है। इस वास्तविकता को हम रोज देखते भी हैं, अनुभव भी करते हैं। प्रवृत्ति में पाप से बचने का प्रयत्न होना चाहिए।

अवांछित मेहमान हैं ये

दूसरी बात, हमारे मन में पुण्य और पाप के प्रति ज्यादा गृह्यता नहीं होना चाहिए। अनासक्ति का भाव होना चाहिए। अगर हम अध्यात्म को आत्मसात् कर लें तो पुण्य और पाप का फल भोगते हुए भी हम उससे अप्रभावित रहने की कला सीख सकते हैं। वस्तुतः कर्म के उदय में, उदय की धारा में बह जाने वाले नये कर्म बाँधने को मजबूर हो जाते हैं और जो कर्म के उदय में उससे अप्रभावित रहते हैं उनके लिये नये कर्म कभी नहीं बँधते।

बन्धुओ, मैं तो आपसे केवल ऐसा ही कहता हूँ कि जैसे कोई आपके घर में अवांछित मेहमान आ जाय, जिसको आप पसंद नहीं करते, वह आपके घर आकर टिक जाये। आप उसकी खूब खातिरदारी करो तो वह आपके घर से कभी जाने को तैयार होगा क्या ? कोई अवांछित मेहमान आपके घर में आया और आप उसकी खातिरदारी में जुड़ गये हैं तो वह कभी घर से बाहर जाने को राजी नहीं होगा, क्योंकि आपने तो वहाँ सब प्रकार की अनुकूलता दे रखीं हैं।

यदि उसे वापिस लौटाना है तो कुछ नहीं करना पड़ेगा, मात्र आप उससे बात करना बंद कर दीजिए। उसकी खातिरदारी बंद कर दीजिए। वह अपने आप

अनादृत अतिथि की तरह चला जायेगा। कर्म के साथ भी यही स्थिति है। जब अच्छे कर्म का उदय होता है तो हम हर्षित हो जाते हैं और बुरे का उदय होने पर विषण्ण हो जाते हैं। हमारे मन में खिन्नता आ जाती है। यही राग और द्वेष नये कर्मों की सृष्टि कर डालता है। हमारे द्वारा कर्म से प्रभावित होना कर्म की खातिरी करना है। और जब हम कर्म से प्रभावित होकर कर्मों की खातिरी करते हैं तो नये कर्मों का बीज हमारी आत्मा में पड़ जाता है। यह संतति निरन्तर चलती जाती है। कर्म की सत्ता का उच्छेद अगर आप करना चाहते हैं तो कर्म से अप्रभावित रहें। कर्म का उदय आये तो भी अपने विवेक को जागृत रखें। विवेक को जागृत रखते हुए अपनी चेतना को उससे प्रभावित होने से बचायें।

दो प्रकार की परिणति होती हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा - जैसे सोना कीचड़ में गिरता है तो भी वह कीचड़ से अलिप्त रहता है। यदि उसे धो लें तो वह वापिस ज्यों का त्यों हो जाता है। हकीकत में सोना कीचड़ को पकड़ता ही नहीं। यदि दूसरी तरफ लोहे को कीचड़ में डाला जाये तो वह जंग खा जाता है। यही स्थिति एक ज्ञानी और अज्ञानी की है। ज्ञानी कर्म के मध्य रह कर भी उससे अलिप्त रहता है। उसका जीवन सोने की तरह होता है। वह संसार की कीचड़ में गिरने के बाद भी सोने-सा चमकता रहता है। उसके अन्दर से आसक्ति नहीं होती। उसका आन्तरिक अलगाव होता है। ये आन्तरिक अनासक्ति ही उसे पाप से बचा लेती है। उसे कर्म से बचा लेती है। इसके विरुद्ध जो अज्ञानी है वह कर्म की कीचड़ में पड़ कर राग-द्वेष की जंग खा जाता है। नतीजतन नये कर्म का बंध होता है और उसका संसार बढ़ता रहता है।

बन्धुओ, एक बात हमें ध्यान में रखना है कि जो हमें शुभाशुभ कर्म का संयोग मिला है वह तो हमारी तकदीर से मिला है। उसे तो भोगना पड़ेगा। लेकिन यह हम पर है कि हम उससे कितना प्रभावित होते हैं? कर्म का फल मिलता है यह तो एक सामान्य प्रक्रिया है। जैसे पेड़ में फल लगा है तो वह पकेगा और पककर टपकेगा। इसी प्रकार कर्म एक दिन झड़ेगा, उसका फलोदय होगा। यह एक सामान्य प्रक्रिया है। लेकिन कर्मोदय से कितना प्रभावित होंगे? यह हम पर निर्भर

है। कर्म आपके शिर में दर्द पैदा कर सकता है। पर शिर के दर्द की अनुभूति आपके विवेक पर है। कोई जरूरी नहीं कि कर्म के उदय से उत्पन्न शिर के दर्द का आप वेदन करें। **कर्म सुख-दुःख उत्पन्न कर सकता है लेकिन उस सुख-दुःख को भोगना आपकी मानसिकता पर निर्भर है। कर्म के तीव्रोदय में भी यदि आप अपनी मानसिकता को अनुकूल बना लेते हैं तो कर्म आपको कहीं से भी प्रभावित नहीं कर सकता** बहुत सारे लोग हैं, जो अपने जीवन में आने वाली दुविधाओं को देखकर हार जाते हैं और अपनी तकदीर को दोष देते हैं। संत कहते हैं तकदीर ही तुम्हें गरीब बना सकती है और तकदीर ही तुम्हें अमीर बना सकती है। तकदीर तुम्हें अच्छा और बुरा रूप दे सकती है। तकदीर तुम्हें संपन्न और विपन्न बना सकती है। लेकिन ध्यान रखना, तकदीर तुम्हें प्रसन्न बनाये, यह कोई जरूरी नहीं। प्रसन्नता तुम्हारे हाथ में है। खुशी तुम्हारे हाथ में है। हो सकता है एक विपन्न आदमी तमाम अभावों के मध्य में भी प्रसन्नता से जीवन बिताने में सक्षम हो जाय और एक व्यक्ति जिसके पास सब कुछ है रात बेचैनी से काटने को मजबूर हो जाय। प्रश्न बाहर की अनुकूलता का नहीं, प्रश्न हमारी मानसिकता का है!

सुख में होकर मग्न न फूलें दुःख में कभी न घबरायें

बहुत गहरा रहस्य छिपा है जैनकर्मवाद में। **कर्म का फल भोगते समय अगर आप जागरूक रहें तो कर्म आपको प्रभावित नहीं कर सकते। उससे जागरूक होने का मन्त्र यही है कि यह अच्छा या बुरा जो कोई भी संयोग मिला है उसे कर्म की परिणति मान करके अपनी धारणा को पलटें और यह सोचें कि संसार में जो कुछ भी उपलब्ध होता है वह पुण्य और पाप का संयोग है और पुण्य और पाप ये दोनों अस्थाई हैं।**

**पुण्य पाप फल माहिं हरख विलखो मत भाई
यह पुद्गल परजाय उपज विनसै थिर नाहीं।**

बस इतनी ही धारणा आपको बनानी है कि संसार के सारे संयोग-वियोग या इष्टानिष्ट संयोग-वियोग जो कुछ भी घटित होते हैं वे सब पुण्य और पाप के

परिपाक से घटित होते हैं। और ये दोनों अस्थायी हैं। ये मेरे आत्मा के स्वभाव नहीं हैं। आत्मा के विकार हैं, और उनका परिणाम आज है, कल रहे, न रहे।

उपज विनसै थिर नाहीं,

उत्पन्न होकर के नष्ट हो जायेंगे। आज यदि पुण्योदय है तो यह भी शाश्वत नहीं है और यदि पाप है तो यह भी शाश्वत नहीं। इस बात को जो ध्यान में रखता है उसकी बुद्धि निमित्तों से प्रभावित नहीं होती। और जो निमित्तों से अप्रभावित रहता है वह हर पल प्रसन्न बना रहता है। प्रसन्नता को यदि आप कायम रखना चाहते हो तो निमित्तों से अप्रभावित होने की कला सीखिए। हम छोटे-मोटे निमित्तों से प्रभावित हो जाते हैं। पल में सामने वाले पर दोषारोपण कर देते हैं। हम परमुखापेक्षी हैं। संत कहते हैं - वस्तुतः हम अपने सुख-दुःख के उत्तरदायी स्वयं हैं। हमारा सारा उत्तरदायित्व हम पर है किसी दूसरे पर नहीं। यह हमारा अज्ञान है और अज्ञान प्रेरित दृष्टि का परिणाम है कि हम दूसरों पर आरोपण करते हैं। उनको अच्छा-बुरा मानना शुरू कर देते हैं। जब तक ऐसी बुद्धि होगी तब तक हम कर्म के बन्ध से बचने में समर्थ नहीं हो सकेंगे। हम महापुरुषों के जीवन चरित्र को पलट कर देखने की कोशिश करें। वे महापुरुष भी कर्म के चक्र से नहीं बच पाये। लेकिन उनके जीवन को जब गहराई से टटोलकर देखते हैं तो यह बात ध्यान में आती है कि बड़ी-से-बड़ी प्रतिकूलता को भी उन्होंने कितनी प्रसन्नता से जिया। कर्म ने उन्हें कष्ट जरूर दिया लेकिन उनकी प्रसन्नता को छीनने में वह समर्थ नहीं हो सका। हम भगवान् आदिनाथ की बात देखते हैं तो पाते हैं कि तीर्थकर की हैसियत से उन्होंने जन्म लिया पर उन्हें भी छह माह तक निराहार रहना पड़ा। तीर्थकर को भी निराहार रहना पड़ा, हालांकि निराहार रहते हुए भी अपनी प्रसन्नता को वे बनाये रहे। आहार के अभाव में उनके मन में खिन्नता नहीं आयी।

क्या कहती हैं पुरा-कथाएँ

हम थोड़ा सा श्रीकृष्ण के जीवन को देखें, वसुदेव के जीवन को देखें, अंजना के जीवन को देखें और सीता के जीवन को देखें। एक और चरित्र भी हम

सबके बीच है श्रीपाल का। थोड़े-थोड़े से यह प्रसंग, हम पुराणों में इनको रोज़ पढ़ते हैं। लेकिन देखिए, इनके जीवन में पुण्य और पाप का चक्र किस तरह से प्रभावित होता है और उसमें ये अपने आपको किस भाँति अलिप्त रखते हैं। वसुदेव जो श्रीकृष्ण के पिता थे। वे कामदेव थे। अतिशय रूपवान्। पुण्य का कितना प्रभाव! कामदेव होने के साथ युवा हुए, जब वे बस्ती में निकलते थे तो सारी नारियाँ उनके रूप पर मुग्ध हो जाया करती थीं। स्थिति यह हुई कि पूरे समाज की व्यवस्था गड़बड़ाने लगीं। मर्यादायें टूटने लगीं। समुद्रविजय तक बात पहुँचीं। उन्हें चिंता हुई कि वसुदेव पर प्रतिबन्ध कैसे लगाया जाये? उन्हें समझा कर कह दिया कि तुम अब राज्योद्यान में ही टहला करो, बाहर नहीं। यहाँ की आबोहवा अच्छी है। उन्होंने अपने बड़े भाई के प्रस्ताव को मान लिया। लेकिन एक दिन भेद खुल गया, एक दासी के माध्यम से। कि यह तो मुझे कैद किया गया है, इतनी बात मन में आयी तो वह बिना सूचना के गुप्तद्वार से निकल गये। इधर समुद्रविजय ने देखा। वसुदेव श्मशान में गये और अपने कपड़े उतारे और वहाँ पड़े किसी अन्य शव के कपड़े पहनकर चल पड़े। देखिए वसुदेव और खाली हाथ चले जा रहे हैं। एक राजकुमार सारा राज्य-वैभव त्याग कर एकदम खाली हाथ चला जा रहा है। कुछ भी नहीं है उसके साथ। ऊपरी तौर पर देखने में तो लगता है कि कुछ भी नहीं है। सच है कि बाहर से कुछ नहीं है परन्तु अन्दर की तकदीर तो मनुष्य के साथ है। यह ध्यान रखना, आदमी बाहर की चीज़ों पर बहुत ज्यादा विश्वास करता है, भीतर की तकदीर पर विश्वास नहीं करता।

तय मानकर चलना कि बाहर की चीज़ें भी तुम्हारे साथ तब तक ही हैं जब तक कि तकदीर है। और जिस दिन तुम्हारी तकदीर चली जायेगी उस दिन कुछ भी नहीं रहेगा। तकदीर चली जाने पर बाहर की चीज़ें रहते हुए भी वे तुम्हारे किसी काम की नहीं रहेगीं।

वे खाली ही चले गये। उनका जीवन बहुत उतार-चढ़ाव से भरा हुआ था। कंस और जरासंध को जब यह मालूम हुआ कि इसका भावी पुत्र हमारा हन्ता बनेगा तो उन्होंने कई तरीके से वसुदेव को मारने का षडयन्त्र किया। पापोदय से वसुदेव की हत्या की स्थिति निर्मित हुई। उन्हें बोरे में बन्द करके पहाड़ी से नीचे

गिरा दिया गया। हाथी के पाँव तले कुँचलने का प्रयत्न किया गया। उन्हें एक गुफा के अन्दर कैद करके मारने का षडयन्त्र किया गया। लेकिन हर जगह उनकी जीत हुई। कहीं न कहीं से कोई मार्ग मिला और वह बच गये। और आखिरकार श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। आप हरिवंशपुराण को थोड़ा सा पलट कर देखियेगा।

लेकिन सबसे बड़ी खासियत यह रही कि जीवन में आयी बड़ी से बड़ी विपत्ति को उन्होंने सहजता से लिया। यह मानकर चले कि यह मेरे कर्म का उदय है। घर छोड़ा, परिवार छोड़ा, सारा संसार छोड़ा, लेकिन अपने आप पर विश्वास करके वह जा रहे हैं। यह ध्यान में आ रहा है कि संसार के सारे संयोग-वियोग पुण्य और पाप के ऊपर निर्भर करते हैं। जब तक वे संयोग मेरे अनुकूल होंगे सब कुछ अनुकूल होगा। जिस दिन संयोग बिगड़ जायेगा, सब प्रतिकूल होगा। यह अनुकूलता और प्रतिकूलताएँ तो हमारे जीवन में एक बार नहीं, अनेक बार आ चुकी हैं। संसार की तो यही कहानी है कि कभी अनुकूल होता है तो कभी प्रतिकूल होता है। इन्हें हम भव-भव में धारण करते हैं और छोड़ते हैं। जो इस तथ्य को जानता है वह बाहर की परिस्थितियों से ज्यादा प्रभावित नहीं होता। सब कुछ खोने के बाद भी वह अपने आपमें प्रसन्न बनाये रहता है। यह भी एक मार्ग है।

क्या कर्मों ने इनको बखशा ?

श्रीकृष्ण जैसे नारायण, नारायण जो तीन खण्ड के अधिपति होते हैं। उनके जीवन में कितनी विपत्तियाँ आयीं। उनका जन्म भी कैद में हुआ। यदि देखा जाए तो ऐसा लगता है कि उस काल में श्रीकृष्ण एक साधारण व्यक्ति से भी क्षीणपुण्य के थे। अरे एक घर में बच्चा जन्म लेता है, कुछ नहीं तो कम से कम थालियाँ बज जाती हैं। वहाँ तो वह भी नहीं। सब कुछ गुप्त, एकदम गुप्त। और वहाँ से भी उन्हें निकलना पड़ा। लेकिन पाप के साथ-साथ पुण्य भी चल रहा था। नंदगाँव में उन्हें संरक्षण मिला। पले-पुसे और बड़े हुए। और अन्ततः कंस का भी अन्त हुआ और जरासंध का भी अन्त हुआ। ऐसे महापुरुष के जीवन में भी आपत्ति आ सकती है। श्रीकृष्ण के बेटे प्रद्युम्न का जन्म लेने के छह दिन बाद ही अपहरण हो गया। कभी आप कल्पना कर सकते हैं। आपके जीवन में थोड़ी-मोड़ी प्रतिकूलता

आती है, तो आप घबड़ा उठते हैं। श्रीकृष्ण नारायण जैसे बेटे का अपहरण ? कौन करा रहा है यह सब ? यह कर्म करा रहा है। कर्म के क्षेत्र में कोई अपवाद नहीं। सोलह वर्षों तक प्रद्युम्न का वियोग रहा। लेकिन सबसे ज्यादा जो ध्यान देने की बात है वह यह है कि बेटे के खो जाने के बाद भी श्रीकृष्ण विचलित नहीं हुए। अविचलित बने रहे। विपरीत परिस्थितियों में समता बनाये रखना जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। यह वही कर सकते हैं जो निमित्तों से अप्रभावित रहते हैं। एक बात को सूत्र के रूप में अंगीकार कर लीजिए कि मुझे निमित्तों से प्रभावित नहीं होना, खास कर असद् निमित्तों से। उन तमाम प्रकार के निमित्तों से बचना है जिनमें मेरे भावों की क्षति होती है। जो मेरे मन की प्रसन्नता को खण्डित करते हों। जिससे मेरी शान्ति भंग होती हो, उसको दूर करेंगे। अप्रभावित होने की कला क्या है ? वास्तविकता की स्वीकृति। यह मान लें कि जब कर्म का उदय होता है तो अनुकूल भी प्रतिकूल बन जाता है। श्रीकृष्ण नारायण हो गये लेकिन उसके बाद भी अपनी द्वारिका को नहीं बचा पाये। द्वारिका जल गयी, नहीं बचा सके। आप विचार करो, एक आदमी अपने हाथ से अपना घर बनाता है और यदि वह जल जाये तो कितना हा-हाकार मचाता है। लेकिन क्या आपने श्रीकृष्ण को हा-हाकार मचाते हुए देखा ? बहुत बड़ी प्रेरणा है। यह इस बात का प्रमाण है कि महापुरुषों का जीवन भी आपत्तियों से रहित नहीं होता। क्योंकि अपने द्वारा किये गये कर्म का फल हर कोई को भोगना पड़ता है। इसलिए बन्धुओ, यदि तुम्हारे जीवन में भी कभी अशुभ का उदय आये, कितना भी तीव्र उदय आये, इसे सहज एक परिणति या नियति मानकर स्वीकार करो। और अपने आपको उससे अप्रभावित रखो। आया है तो जायेगा। दुख आया है तो भी जायेगा। सुख आया है तो भी जायेगा। अनुकूल आया है तो भी जायेगा, प्रतिकूल आया है तो भी जायेगा। ऐसी धारणा बनाकर रखोगे तो आप अप्रभावित बने रहोगे। इसी का नाम साक्षीभाव है। यह जीवन जीने की बहुत बड़ी कला है। **हम कर्म को दोषी ठहराते हुए अपने जीवन को दूषित कर लेते हैं। कर्मोदय हो, हम उससे प्रभावित न हों। यही हमारे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है** आ जाये, जो होना है सो होना है, कोई फर्क नहीं पड़ता। यह श्रीकृष्ण के जीवन का रहस्य है।

सीता का धैर्य सुमेरु-सा अविचल

सीता जी के जीवन को देखिए आप, बन्धुओ अगर आप शास्त्रों को पढ़ें, खासकर पुराणों को पढ़ेंगे तो आपको तीन बातें विशेष रूप से देखने में आयेगी - 1. महापुरुषों की लीला, 2. कर्मों की विचित्रता और 3. पुण्य-पाप का खेल।

जितने भी महापुरुष होते हैं, वे एक लीलामय जीवन जीते हैं। उनके जीवन में अप-डाउन्स बहुत आते हैं। लेकिन वे अपने जीवन में ठहराव बनाये रखते हैं। वे बहुत ज्यादा इन्वॉल्व नहीं होते। हम प्रेरणा ले सकते हैं उनसे। बहुत कुछ सीखने को प्राप्त हो सकता है उनसे। आप एक-एक को पढ़ें। घटनाओं को केवल घटनाओं की तरह न पढ़ें, अपितु उन्हें अन्तर्घटना के रूप में देखें। कर्मों की विचित्रता को देखेंगे तो ऐसा लगेगा कि कर्मों से कोई बचा हुआ नहीं है। हर कोई को कर्म का फल भोगना पड़ता है। और यह सारा खेल पुण्य-पाप का है। पुण्य का योग आता है एकदम ऊपर चढ़ा देता है और पाप का योग आता है तो एकदम नीचे पटक देता है। सब अशाश्वत है। इसको समझिये।

सीता जी के जीवन को देखिए, कितना कष्टमय जीवन रहा। विवाह के दूसरे दिन से ही वनवास जाना पड़ा। आज की कोई सीता होती तो अधीर हो गयी होती। वह वनवास जाने की जगह किसी वकील से सम्पर्क करना पसंद करती। कोई रास्ता पूछती कि जिससे अधिक से अधिक सम्पत्ति मिले और डायवर्स का रास्ता क्लियर हो जाय। यह सोच होती। लेकिन सीता भारतीय संस्कृति के लिये आदर्श बन गयी। पूरी नारी जाति के लिये एक बहुत बड़ी प्रेरणा बनीं। उन्हें निकाल दिया गया, वनवास हुआ। अग्निपरीक्षा के बाद भी जब सीता जी को निकाला गया तब सीता ने न तो रावण को दोष दिया और राम को। उन्होंने तो रावण के सन्दर्भ में यही कहा कि इसमें दोष रावण का नहीं, मेरे रूप का है। यदि मेरा रूप ऐसा नहीं होता तो रावण के मन में ऐसी कुदृष्टि क्यों होती। यह एक दृष्टि है। **एक ज्ञानी की दृष्टि है जो दूसरों पर दोषारोपण न करके स्वयं पर आरोपण कर अपने परिणामों को सम्हाल लिया करते हैं** ठीक है जो होगा देखा जायेगा।

रामचन्द्र जी ने जब सीता का परित्याग किया तो सीता ने रामचन्द्र को दोष नहीं दिया। केवल यही कहा कि यह मेरे भाग्य का खेल है। यदि उसे यह मंजूर है तो मुझे यह भी स्वीकार है। जैन रामायण के अनुसार रामचन्द्र को उन्होंने बहुत सुन्दर संदेश दिया। जैन रामायण के अनुसार सीता को वन में छोड़ने के लिये कृतान्तवक्र गये। तीर्थयात्रा के बहाने उन्हें ले जाया गया। जब कृतान्तवक्र उन्हें छोड़ रहे थे, तब उनका मन बड़ा भारी हो रहा था कि क्या करें? स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता।

उन्होंने जब सीता के सामने रहस्य खोला तो सीता जी ने एकदम सरल भाव से कहा - कृतान्तवक्र जाओ, और मेरे स्वामी से कहना कि जिस तरह लोक लाज की खातिर आज तुमने मुझे छोड़ दिया है कल उसी तरह कहीं धर्म को न छोड़ देना। कितना गहरा संदेश सीता ने दिया।

बाल्मीकि रामायण में तो और आगे की बात कही गई है। बाल्मीकि रामायण में सीता के मुख से जो कहाया गया है वह बहुत ऊँचा आदर्श है। वे कहती हैं - जाओ, तुम मेरी तरफ से प्रभु से कहना कि मैं ऊँचे-ऊँचे पर्वतों के शिखर पर बैठकर, सूर्य की तरफ मुख करके कठोर तपस्या करूँगी। और यह चाहूँगी कि यदि अगले जन्म में कोई पति मिले तो श्रीराम ही पति मिलें। कितना बड़ा आदर्श था। राम ही मेरे पति बनें। है कोई आज ऐसी स्त्री, जो पति के दुर्व्यवहार के आगे भी इतना उदार भाव रखे। असंभव है। लेकिन जो अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न होते हैं उनके द्वारा यही सम्भव होता है। उन्होंने रामचन्द्र को दोष नहीं दिया, अपने कर्म को दोष दिया। यह सारा खेल है।

अंजना को बावीस वर्षों तक अपने पति का वियोग सहना पड़ा। कभी उन्होंने पवनंजय को नहीं कोसा। पति को दोष नहीं दिया। अरे, पति तो निमित्त है, खेल खिलाने वाला तो कोई और है। हम उसकी तरफ नहीं देखते। ठीक है, पति हमारे परमेश्वर है, प्राणेश्वर हैं। उनके लिये मैं तो कुछ भी गलत नहीं सोच सकती। मेरे ही कर्म का योग है, अतः मैं सहन कर लूँगी। उसी धीरज के फल से अंजना ने हनुमान जैसे पुत्र को जन्म देने का सौभाग्य पाया। यह बात बहुत सोचने

और समझने की है। मन में धैर्य होना चाहिए और निमित्तों से अप्रभावित होने की कला सीखनी चाहिए। यदि ये बातें हमारे जीवन में उतर जाती हैं तो हमसे बड़ा सुखी इस संसार में कोई नहीं हो सकता। और जिसके जीवन में ये बातें नहीं हैं उसके जीवन में तमाम सुविधाएँ भी हो तो भी उससे अधिक दुःखी कोई और नहीं होगा।

भूले नहीं लक्ष्य को अपने

दो प्रकार के प्राणी हैं - 1. कुत्ते जैसे और 2. शेर जैसे। कुत्ते और शेर में बहुत अन्तर है, आप तो जानते ही हैं! लेकिन कुत्ता स्वामीभक्त है, वफादार है। फिर भी कोई कुत्ते का नाम पसंद नहीं करता। शेर एकदम खूंखार, क्रूर और उसके शरीर से बदबू भी आती है परन्तु यदि आदमी को शेर कह दें तो वह फूल जाता है। यदि कुत्ता कह दिया जाय तो मामला बिगड़ जाता है। शेरसिंह तो मिल जायेंगे। सिंह को अपने नाम के आगे-पीछे लगाने वाले भी मिल जायेंगे। लेकिन कुत्ता, श्वान, कुक्कर यह कोई नहीं लगायेंगे। क्यों? मालूम! इसके पीछे दो कारण हैं - कुत्ते में बहुत सारे गुण हैं परन्तु एक बहुत बड़ा दुर्गुण है कि वह अपनी जाति से द्रोह रखता है। वह बिरादरी से लड़ता है, और जो अपनी बिरादरी से लड़ता है वह कभी सम्मान नहीं पा सकता। यह एक कारण है। कुत्ता कुत्ते को देखकर गुराँता है।

लेकिन आज के सन्दर्भ में जो बात कह रहा हूँ वह आप सबको ध्यान देने योग्य है - कुत्ते को यदि पत्थर मारा जाये तो वह पत्थर की तरफ लपकता है। और यदि शेर को गोली मारी जाय तो वह गोली की तरफ न जानकर गोली चलाने वाले की तरफ जाता है। दोनों की प्रकृति में बहुत अन्तर है।

कभी-कभी यह भी हो जाता है कि शेर गोली चलाने वाले पर झपटकर उसका अन्त भी कर देता है। लेकिन कुत्ता पत्थर की तरफ भागता है, तो वह जब तक उस पत्थर तक पहुँच पाता है, तब तक उसे दो-चार पत्थर और पड़ जाते हैं।

यही परिणति है ज्ञानी और अज्ञानी की। ज्ञानी के जीवन में जब अनुकूल-प्रतिकूल संयोग और वियोग आते हैं, तब वह उन निमित्तों को, पत्थरों को नहीं देखता। वह पत्थर फेंकने वाले को देखता है। वह जानता है कि जो ये पत्थर फेंके

जा रहे हैं वे सब मेरे भीतर के कर्म के द्वारा ही फेंके जा रहे हैं। वह मूल को देखता है। जब मूल को देखता है तो उससे प्रभावित नहीं हो पाता और उसकी जड़ उखाड़ देता है। लेकिन जो अज्ञानी है वह कुत्ते की तरह पत्थर की तरफ भागता है यानि निमित्तों की ओर भागता है। निमित्तों की तरफ भागने के कारण जो रागद्वेष उत्पन्न होते हैं उनसे नये कर्म और बंध जाते हैं। अपना थोड़ा सा अन्तःविश्लेषण करके देखना कि किस तरह से जी रहे हो! कुत्ते की तरह या शेर की तरह। कुत्ते की तरह जीना अच्छी बात नहीं। जो कुत्ते की तरह जियेंगे उनकी कोई कद्र नहीं हो सकती। इसलिए शेर की तरह जियो। शेर बनने की कोशिश करो। अपने आपको पहचानने की कोशिश करो। जीवन धन्य हो जायेगा। निमित्तों से अप्रभावित रहने की कला जो अपना लेता है संसार में उससे बड़ा सुखी कोई नहीं होता। उसके जीवन में एक प्रकार का ठहराव बना रहता है। न कभी प्रसन्नता होगी, न कभी खिन्नता होगी। न कभी आशा होगी, न कभी निराशा। वह सबमें समभाव बनाने में समर्थ होगा।

अन्तस् को मजबूर रखें

बन्धुओ, बाहर के संयोगों को बदलना हमारे वश का नहीं है, लेकिन अन्तर की परिणति को बदल लेना केवल हमारे ही वश का है। तकदीर से जो कुछ मिला है उसे स्वीकारो और उसमें भी प्रसन्न रहने की कला अपनाओ। तकदीर का रोना, भाग्य का रोना तो कायर रोते हैं। जो समझदार हैं वे अपने दुर्भाग्य को भी सौभाग्य में बदलने की सामर्थ्य रखते हैं। हमारा कर्मसिद्धान्त यह कहता है कि यदि अशुभ कर्म के उदय में शुभ परिणाम बने रहें तो अशुभ भी शुभ में परिवर्तित हो सकता है। संक्रमण हो सकता है, परिवर्तन हो सकता है। और यदि शुभ के उदय में अशुभ परिणाम बना रहे तो शुभ भी कभी-कभी अशुभ में परिवर्तित हो जाता है। यह सिद्धान्त है। सबसे बड़ी जो बात है वह है अपने परिणामों की स्थिरता की, परिणामों की सजगता की। इन सब बातों को हम सबको सबसे अधिक प्राथमिकता के साथ स्वीकार करना चाहिए। हम लोग हैं जो पुण्य-पाप की चर्चाएँ भी बहुत करते हैं, कर्म-सिद्धान्त की मीमांसा भी बहुत कर लेते हैं, पर उसका अनुसरण नहीं करते। कर्मसिद्धान्त

की जितनी भी बातें हैं या पुण्य-पाप की जितनी भी बातें हैं वे केवल चर्चाओं की नहीं हैं, ये तो जीवन में उतारने की चीजें हैं। यदि इनको जीवन में उतार लें तो संसार में हमसे बड़ा दूसरा कोई सुखी नहीं हो सकता।

आप श्रीपाल के चरित्र को पलट कर देखें। एक चलचित्र की तरह आपको पुण्य और पाप का खेल मिलेगा। श्रीपाल ने अतीत में जब-जब पाप किया, उसे उसका फल भोगने को मिला। यदि पश्चात्ताप किया, पुण्य किया तो वह उसका संरक्षक बनकर आया। पाप किया था तो समुद्र में डूब गया, जहाज टूट गया। पुण्य का योग आया तो उसे तख्ते का सहारा मिल गया। मुनियों का उपहास किया तो भाँड़ बन गया। बाद में पश्चात्ताप किया तो उसका संरक्षक भी मिल गया। पैसा कमाया भी, गमाया भी, ऊपर चढ़ा भी, नीचे उतरा भी। पूरे चरित्र को पटल कर देखिए, यदि विस्तार से सुनाऊँगा तो बहुत समय हो जायेगा।

इस सबके होने पर भी श्रीपाल के चेहरे पर चिंता की एक लहर भी नहीं आयी, विशेषता तो इसकी है। पुण्य बदल कर पाप हो जाय और पाप बदल कर पुण्य हो जाय, यह तो बहुत उथली बात है। पुण्य और पाप के उदय में समता बनी रहे यह सबसे बड़ी बात है। यह अन्दर में बनना चाहिए। वह समता हम बढ़ा सकते हैं, यही हमारा पुरुषार्थ है।

धर्मोपदेश के श्रवण से, शास्त्रों के स्वाध्याय से, गुरुओं के समागम से केवल यही बात सीखी जा सकती है। और यही सीखनी चाहिए। उतना आ गया तो जीवन का सबसे बड़ा पुरुषार्थ हो गया।

एक पल को भी श्रीपाल विचलित नहीं हुए। कंचनवर्णी देहधारी के शरीर में कोढ़ हो जाये, तो डिप्रेसन में आ जाते हैं। अच्छे-अच्छे नौजवान अवसाद ग्रसित हो जाते हैं। अरे भैया, चिंता ग्रसित होकर के बैठ जाओगे तो पाओगे क्या? कुछ हुआ है, अशुभ का उदय है, उसे एक चुनौती मानो और उसे उपलब्धि में परिणत करने का संकल्प लो। जीवन में आने वाली विषमताओं को एक चुनौती की तरह स्वीकारिये और अपनी कुशलता से उन्हें उपलब्धि का रूप दीजिए। यह किया जा सकता है, यदि हमारी इच्छा शक्ति प्रबल हो तो। हमारा संकल्प दृढ़ हो और

हमारी सोच पाजिटिव हो। हमारे मन में साहस हो, लगन हो, तो सब चीजें अपने आप हो सकती हैं। असंभव को भी संभव बनाया जा सकता है। कितना अशुभ होगा, कब तक खेल खेलेगा। ध्यान रखना कर्म ताकतवर है, लेकिन जीव उससे भी ताकतवर है। अन्ततः जीव और कर्म के संग्राम में जीत तो केवल जीव की ही होती है। कर्म को हारना पड़ता है। आज हारेगा तो, या कल हारेगा तो। ये बात और है कि अब तक जीव हारता रहा है। जब तक हम अज्ञानी बने रहेगे, अपनी आत्मशक्ति को उद्घाटित नहीं करेगे, हमारी हार होती रहेगी। जिस पल हमारी आत्मा उद्घाटित हो जायेगी उस पल कोई हरा नहीं सकता। वह हमारी स्थायी जीत होगी। जितने भी मुक्तात्मा हुये वे आत्मशक्ति के बल पर कर्मों की सत्ता का उच्छेद करके ही वहाँ तक पहुँचे हैं। हम भी वहाँ पहुँच सकते हैं। हमारा स्थान भी वहाँ बन सकता है। वैसी दृष्टि अपने अन्तरंग में विकसित करने का प्रयत्न होना चाहिए। वैसा संकल्प होना चाहिए, वैसी तैयारी होना चाहिए तो सुनिश्चित रूप से जीवन में बहुत बड़ी सफलता अर्जित हो सकती है।

बन्धुओ, कर्म सिद्धान्त के रहस्य को हम समझें। और अपने जीवन को उसी अनुरूप ढालने का प्रयास करें। संसार में रहें तो अनासक्ति पूर्वक रहें, जागरूकता पूर्वक रहें। हम अपनी समता को बनाये रखने का प्रयास करें और रागद्वेष कम से कम करने की कोशिश करें।

बस एक सूत्र को पकड़ें हम

यद्यपि आप गृहस्थ हैं, आपकी प्रवृत्ति में पुण्य और पाप दोनों जुड़े हुए हैं। यथार्थतः देखा जाये तो पुण्य के क्षण तो बहुत कम होते हैं, पाप की क्रियाएँ कुछ ज्यादा होती हैं। इसके लिये हम क्या करें? एक सूत्र मैं देता हूँ। आचार्य उमास्वामी ने कर्मबन्ध की प्रक्रिया का उपदेश देते हुए हम सबको एक बहुत गहरी बात बताया है। वे कहते हैं -

तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ 6/6 ॥

हमारे द्वारा बांधे जाने वाले कर्मों के फलों में विशेषता हमारे द्वारा कर्मबन्ध के समय होने वाली ही जितनी तीव्रता, मन्दता, ज्ञातभाव या अज्ञातभाव, के

अधिकरण और उस कार्य में लगने वाली शक्ति के ऊपर निर्भर है। शुभक्रिया हो या अशुभक्रिया, क्रियाओं के साथ जो हमारा तीव्र भाव जुड़ा रहता है, उसका परिणाम उतना ही होता है। अच्छी और बुरी क्रिया को जितने उत्साह से, जितनी ताकत लगाकर जितनी रुचि से करेंगे, उसका उतना ही परिणाम होगा। इसलिये मैं आप सबसे कहना चाहता है कि अगर बुरे परिणाम से बचना चाहते हो, और कर्म के सामने अपनी ताकत को कायम रखना चाहते हो तो जो भी बुरे कार्य हों उन्हें मन मारकर करो। ऐसे करो कि करना पड़ रहा है, करना नहीं चाह रहे हैं। उससे क्या होगा? एक तो आपके चित्त में स्थिरता बनी रहेगी और दूसरी बात जो कर्म बँधेगा वह ज्यादा प्रभावी नहीं होगा। मजबूरी जैसी बात होना चाहिए।

कोई अच्छा कार्य हो तो उसमें पूरी ताकत झोंक दो। उसे पूरे उत्साह के साथ करो। लेकिन हम लोग उलटा करते हैं। पाप कार्य करने में तो ऐसे तल्लीन हो जाते हैं जैसे कि शुक्लध्यान हो रहा हो। और यदि अच्छा कार्य करने की बात की जाय तो मन मारकर करते हैं। यह चूक है। इस सोच को बदलिये। बुरे कार्य के प्रति उदासीनता का भाव, अनासक्ति का भाव और अच्छे कार्य के प्रति उत्साह की भावना यदि मन में बनने लगे तो हम कर्मचक्र से बहुत जल्दी मुक्त हो सकते हैं। ऐसी पात्रता विकसित हो सकती है कि जिसके बल पर हम अपने जीवन का कल्याण कर सकते हैं।

बन्धुओं, कर्म सिद्धान्त के इस रहस्य को हम समझें, अपने जीवन में व्यावहारिक रूप से कर्मसिद्धान्त को हम कैसे अपना सकते हैं, इन बिन्दुओं पर सभी को विचार करने की जरूरत है। जैन कर्मसिद्धान्त को जो व्यक्ति समझ लेता है वह व्यक्ति हर स्थिति में समता बनाये रखने का अभ्यासी हो सकता है। हमारे जीवन में वह समता प्रकट हो, जिससे हम अपने जीवन के जो झंझावात हैं उसके बीच भी अपनी निष्ठा के दीप को प्रज्वलित रख सकें, हमारा चित्त विचलित न हो, और हम धर्म के सच्चे लाभ को प्राप्त कर सकें, इसी भावना के साथ।

१५-४-०६ चौरंगी

जलायें संस्कारों की ज्योति

क्या शिक्षा की परिधि बड़ी ?

वर्तमान युग विकास का युग है। तकनीकी, प्रौद्योगिकी और बौद्धिक विकास के दौर में मनुष्य ने नये-नये प्रतिमान स्थापित किये हैं। आधुनिक युग के विकास के इस दौर में ऐसा लगता है कि जो कुछ हुआ है या हो रहा है वह गलत तो नहीं पर अधूरा ज़रूर है। केवल तकनीकी, प्रौद्योगिकी या बौद्धिक विकास के बल पर ही हम अपने जीवन का परिपूर्ण विकास नहीं कर सकते। जीवन के परिपूर्ण विकास के लिए आवश्यक है इन सबके साथ-साथ नैतिक, चारित्रिक और भावनात्मक विकास की। जिस मनुष्य का नैतिक, चारित्रिक और भावनात्मक पक्ष अधूरा होता है उसका जीवन भी अधूरा ही होता है। विकास के युग में एकतरफा विकास हो रहा है। और उसका कारण कुल यह है कि जो हमें शिक्षा दी जा रही है वह अधूरी ही दी जा रही है।

सा विद्या या विमुक्तये

अधूरी शिक्षा से पूरे जीवन का निर्माण कैसे हो सकता है? अपरिपूर्ण शिक्षा सम्पूर्ण व्यक्तित्व को जन्म नहीं दे सकती। आज आवश्यकता है जीवन के परिपूर्ण विकास की, जीवन के समग्र निर्माण की। और यह तभी संभव है, जब हम जीवन के मूल तत्त्व को समझेंगे, भौतिक क्षेत्र में हम चाहे कितना ही आगे क्यों न बढ़ जायें यदि हम आध्यात्मिक क्षेत्र में पिछड़ते हैं तो हमारे जीवन का कल्याण कभी नहीं हो सकता। आज मनुष्य की समझ बढ़ी है, सोच बढ़ी है, शक्ति और क्षमताएँ भी बढ़ी हुई हैं। लेकिन यह देखने में लगता है कि मनुष्य की बाह्य शक्तियाँ जितनी विस्तीर्ण हो रही हैं, वह स्वयं उतना ही शक्तिहीन होता जा रहा है। एक तरफ हमने बाहर में एक से एक चीजों को ईजाद किया और दूसरी तरफ उतने ही खोखले होते जा रहे हैं।

दें संभावनाओं को सही दिशा

संत कहते हैं - जब तक मनुष्यमात्र मानवीय चेतना के धरातल पर खरा नहीं उतरता, तब तक वह किसी काम का नहीं होता। वस्तुतः शक्ति एक साधन है और साधन का सदुपयोग भी किया जा सकता है और दुरुपयोग भी। माचिस की एक तिल्ली से हम किसी के घर के चूल्हें में आग भी जला सकते हैं और किसी के घर या बस्ती को भी खाक में मिला सकते हैं। एक माचिस है जो सृजनकारी भी बन सकती है और वही विध्वंस की पर्याय भी बन सकती है। एक के माध्यम से प्रकाश भी मिल सकता है और उसी के माध्यम से प्रलय का दृश्य भी आ सकता है। हमारे पास तमाम शक्तियाँ हैं, ऊर्जाएँ हैं, अपार ऊर्जा के हम स्वामी हैं। आवश्यकता है उसे सही दिशा देने की। सही दिशा और सही शिक्षा सही संस्कार से ही संभव है।

आज यह विडम्बना है, कि जब कभी भी हम अपने बच्चे के भविष्य के विषय में सोचते हैं तो मात्र यह सोचते हैं कि मेरा बेटा पढ़-लिखकर डाक्टर, इंजीनियर और कोई बड़ा तकनीशियन बन जाय, चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट बन जाये, मैनेजमेंट में आगे बढ़ जाय, लेकिन हम यह बहुत कम सोच पाते हैं कि मेरा बेटा पढ़-लिखकर एक अच्छा इंसान बन जाय। जबकि यह जीवन के लिए सबसे जरूरी है। आर्थिक प्रतिस्पर्धा के इस दौर में और बौद्धिक विकास के इस युग में मैं आधुनिक शिक्षा के खिलाफ नहीं हूँ। शिक्षा बिल्कुल जरूरी है उसे आप दीजिए, लेकिन जितनी तत्परता आप अपने बच्चों को शिक्षित करने में रखते हैं, उतनी ही तत्परता अपने बच्चों को संस्कारित बनाये रखने में कीजिए। तभी आपका बेटा रह पाये, अन्यथा आपका बेटा आपके ही हाथ से खो जायेगा।

आपकी संतान है, संतान को बेटा भी कहते हैं और संतान को लड़का भी कहते हैं। बेटा वह है जो शिक्षित और संस्कारित होकर अपने माँ-बाप के प्रति समर्पित रहे और लड़का वह है जो अपने माँ-बाप से भी लड़कर खाता रहे। जिसके जीवन में उद्भूतता, जिसके जीवन में उद्दण्डता हो, जिसके व्यवहार में अशालीनता और असंस्कार हो वह लड़का हो सकता है, बेटा नहीं। मैं आप सबसे कहना चाहता हूँ कि जीवन के इस पक्ष की ओर भी आपका ध्यान जाना चाहिए। भावी

पीढ़ी के निर्माण का गुरुतर दायित्व समझिये। यह युग की आवश्यकता है। हम बहुत-बहुत आगे बढ़ रहे हैं, पर भीतर की तरफ हमारा ध्यान नहीं है।

चाँदनी चारित्र की

हमारे चित्त के दो पक्ष हैं - 1. ज्ञानात्मक पक्ष और 2. भावनात्मक पक्ष। बुद्धि और भावना दोनों ही तत्त्व हमारे जीवन के लिये अनिवार्य हैं। आनुषंगिक रूप से इनका उपयोग हमें करना भी पड़ता है। लेकिन आज के युग में हम देख रहे हैं कि बौद्धिक पक्ष तो दिनों-दिन प्रबल होता जा रहा है और भावनात्मक पक्ष कमजोर होता जा रहा है। उसके नतीजे सामने आ रहे हैं। हमारी एक-दूसरे के प्रति संवेदना क्षीण हो रही है। परस्पर प्रेम, वात्सल्य और स्नेह का भाव खत्म हो रहा है। अन्य प्राणियों के प्रति जैसी सहानुभूति हमारे मन में होनी चाहिए वह नहीं हो रही है। नतीजतन हमारा व्यवहार अत्यन्त रूखा होता जा रहा है। हमारी प्रवृत्ति एकदम क्रूर और असंयत होती जा रही है। उसके परिणाम को भी प्रत्येक व्यक्ति भोग रहा है। उसको रोकने के लिए हमें जड़ से ध्यान देने के जरूरत है। इसलिए मैं आप सबसे कुछ कह रहा हूँ कि चरित्र के निर्माण के लिए कुछ सोचिए। हम लोग मन्दिर के निर्माण की बात तो बहुत कर लेते हैं। भगवान् के निर्माण की भी बात बहुत कर लेते हैं।

बन्धुओ, मैं आप सबसे कहना चाहता हूँ कि मन्दिर का निर्माण बहुत सरल है, भगवान बनाना भी बहुत सरल है। हमारे आचार्यों ने एक व्यवस्था दे दी पंचकल्याणक की और एक सूरिमंत्र दे दिया। सूरिमंत्र फूँक दो तो पत्थर भगवान् बन जाते हैं। यह व्यवस्था तो हमारे पास है। मुनिगण पाषाण की प्रतिमा में सूरिमंत्र देते हैं तो उस पाषाण की प्रतिमा को हम भगवान् मान लेते हैं, यह व्यवस्था तो शास्त्रों में है, लेकिन ऐसी कोई व्यवस्था हमारे शास्त्रों में नहीं दिखती कि मैं आपके कान में कोई मन्त्र फूँकू और आप एक अच्छे इंसान बन जाओ।

पहला दायित्व आपका

शास्त्रों में यह व्यवस्था नहीं है, लेकिन इसके लिये आपको स्वयं आगे आना होगा। उसका सारा उत्तरदायित्व आपके कंधों पर है। उसकी जबाबदारी आपकी है। प्रयत्न और पुरुषार्थ आपको स्वयं करना पड़ेगा। बन्धुओ, आज इस

चीज की बहुत ज्यादा आवश्यकता हो गयी है। लोग कहते हैं कि महाराज, हमारे बच्चे धार्मिक कार्यों में रुचि नहीं लेते, धर्म-कर्म से दूर होते जा रहे हैं, आचार-विचार बिगड़ रहा है, खान-पान बिगड़ रहा है, हम क्या करें? पहले अपने आपको सम्हालिये। अपने घर के वातावरण को ठीक कीजिए। आपके बच्चे पर असर जरूर पड़ेगा। बच्चा जो कुछ भी सीखता है, वह सबसे पहले घर के व्यवहार से सीखता है। घर में भी वह अपनी माँ के व्यवहार से सीखता है। इस तरफ भी हमारा ध्यान जाना चाहिये। माँ का बच्चे के चारित्रात्मक निर्माण और भावनात्मक विकास में महत्वपूर्ण स्थान होता है।

रूस में एक प्रयोग हुआ था। कुछ सद्यःप्रसूत बँदरियों को माँ के पास रखा गया और कुछ बँदरियों को कृत्रिम - मशीनी बँदरियों के पास रखा गया। उनको एक-सा पोषण और एक-सा आहार दिया गया। किसी चीज की कमी नहीं की गयी। जब उन्होंने प्रयोगों के बाद निष्कर्ष निकाला तो जिन बँदरियों को माँ के पास रखा गया था उन बँदरियों के शारीरिक और बौद्धिक विकास के साथ-साथ भावनात्मक विकास भी समान रूप से हो रहा था। लेकिन जिन बँदरियों को माँ से अलग रखकर कृत्रिम - मशीनी बँदरियों के पास रखा गया था, उनका भावनात्मक विकास नहीं हो सका। परिणामतः उनकी प्रवृत्ति ज्यादा क्रूर हो गयी। तब यह बताया गया कि एक शिशु का माँ के नजदीक होना कितना महत्व रखता है।

आज हम ये सब व्यवस्थाएँ भूलते जा रहे हैं। बच्चे को पैदा करते हैं, साल-छह महिने का होता है तो उसे झूलाघर में भेज देते हैं। हम जड़ को ही कमजोर कर रहे हैं। अपने बच्चे को गोद में न रखकर झूलाघर में भेजोगे तो बुढ़ापे में वे तुम्हें भी झूला झुलायेगे, इसके अलावा कुछ भी नहीं करेगा। कहाँ के संस्कार हैं? उसके मन में तुम्हारे प्रति अपनत्व कहाँ से आयेगा? जो प्यार और स्नेह की उसे जरूरत थी आपसे, उसे आपने दिया ही नहीं तो आपके प्रति लगाव उसके अन्दर आयेगा कहाँ से? थोड़ा बड़ा हुआ तो हमने शिक्षा के नाम पर होस्टल में भेज दिया। होस्टल में उसे पढ़ाया तो बहुत अच्छे से गया, किन्तु संस्कार के नाम पर शून्य। उसे केवल अपने कोर्स से और टेक्ट से मतलब है। पढ़-लिखकर के बच्चा उच्च शिक्षा से सम्पन्न होकर के आया। जीवन व्यवहार में उतरने की बात आयी,

किसी कम्पनी में जाँव किया। मेट्रोपोलिटिन सिटी में रहा या विदेश चला गया। अब क्या हुआ? माँ-बाप उसके लिये अप्रसांगिक हो गये।

ऐसे बेटों के लिये माँ-बाप माँ-बाप न होकर मेहमान बन जाते हैं। आपकी उसके साथ जो नजदीकियाँ अपेक्षित हैं, उनकी यदि आप उपेक्षा करोगे तो परिणाम कभी भी अच्छा नहीं आयेगा। महाराज, क्या करें? क्या हम अपने बच्चों को पढ़ाने के लिये बाहर न भेजें? यदि बच्चों को पढ़ाने के लिये बाहर नहीं भेजेंगे तो उनका विकास कैसे होगा? बच्चों को बाहर भेजिये, लेकिन अपने बच्चों को अपने से जोड़े रखिए। आज तो संचारक्रान्ति का युग है। उसके माध्यम से भी जुड़े रह सकते हैं। और बीच-बीच में अपने पास रखिए। एकदम छुटपन में बच्चों को होस्टल में नहीं भेजिए। थोड़ी उनकी उम्र हो जाय तब भेजिए। तब तक उसे अपने पास रखिए, जिससे कि वह आपकी प्रवृत्ति, व्यवहार और कुलाचार को समझ सके। वे संस्कार उसकी जीवन-घुट्टी में आ सकें। यदि आप ऐसा करेंगे तो, वह बच्चा जब पढ़-लिख कर बड़ा होगा तो चाहे कितना ही उच्च अधिकारी क्यों न हो जाय, आपको कभी भुलायेगा नहीं। अगर इन बातों का अभाव होगा तो आपका बेटा आपके हाथों से बाहर निकल जायेगा।

गुरुकुल के संस्कार जरूरी

आज के युग में यह बहुत ज्यादा जरूरत हो गयी है कि जब बच्चों की पढ़ाई पूरी हो जाय तो कम-से-कम एक वर्ष तक वे गुरुओं के पास रहें; और उनसे आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण करें। फिर वे जीवनव्यवहार के क्षेत्र में आगे आयें। इस तरह वह एकदम पक्का आदमी बन करके रहेगा। उसके जीवन का कोई पक्ष कमजोर नहीं होगा। लेकिन इन बातों पर हम ध्यान नहीं देते। हम अपने बच्चों को ऐसे शिक्षा संस्थानों में भेजें, जहाँ उसे शुरू से पापभीरुता और संवेदनशीलता का पाठ पढ़ाया जाय, धर्म की आधारभूत बातों की शिक्षा दी जाय। आज शिक्षा तो पाते हैं लेकिन उसके साथ कुसंस्कार भी पा जाते हैं। बहुत सारी चीजें तो ऐसी हैं जो भारतीय संस्कृति के विरुद्ध जा रही हैं। मैं इसमें दोष बच्चों का नहीं मानता, अपितु सबसे ज्यादा दोष उनके अभिभावकों व पालकों का मानता हूँ, जो अपने बच्चों को ठीक ढंग से पाल नहीं पाते।

कुरलकाव्य में लिखा है - संतान को पाकर, जन्म देकर इस योग्य बनाओ कि उसे देखकर लोग तुमसे पूछें कि किस पूर्व जन्म के पुण्य से तुमने ऐसी संतान को पाया है। हमारी सार्थकता ऐसी हो।

कल ऐसा हो सकता है

लेकिन जो संतान को जन्म देकर के उसमें अच्छे संस्कार नहीं डालते, उसके जीवन का सही विकास नहीं करते वे धरती के बोझ को बढ़ाते हैं। हम देखें कि हम कर क्या रहे हैं? प्रारम्भ से ऐसा कार्य करें। ऐसे शिक्षा संस्थानों को खोलें। आज कलकत्ता महानगर में बहुत सारी चीजें हैं, आज जब मैं चर्या के लिये जा रहा था मुझे बताया जा रहा था कि महाराज, ये ये है, ये ये है। लेकिन आप क्या कर रहे हो? आपने कभी विचार किया कि आप अपनी भावी पीढ़ी के निर्माण के लिये क्या कर रहे हैं? यदि भावी पीढ़ी संस्कारहीन हो जायेगी तो हमारे समाज और संस्कृति का भविष्य क्या होगा? कभी आपने विचार किया?

सब कुछ बदलता जा रहा है। आज से कुछ वर्ष पूर्व हम भोपाल में थे। धूपदशमी के दिन वहाँ सारे मन्दिरों की वन्दना के लिये लोग निकलते हैं। भोपाल में काफी दूर तक, 30 मन्दिर हैं और लगभग 25 किलोमीटर चलना पड़ता है। सारे मन्दिरों के दर्शन के लिये लोग निकलते हैं, बसें निकलती हैं। मैं अपने स्थान पर बैठा था, एक परिवार आया। परिवार के सब लोगों ने प्रणाम किया। उनके साथ एक अठारह साल का युवक भी था। वह ऐसे खड़ा है जैसे कुछ अजूबा-सा देख रहा हो। उसके पिताजी ने कहा - बेटे! प्रणाम करो, ये अपने महाराज जी हैं। वह एकदम सकपका गया। पिताजी ने फिर कहा - बेटे, ये अपने महाराज जी हैं, इनको प्रणाम करो। उसने अत्यन्त संकोच से भरकर बमुश्किल हाथ से (ईशारा) ऐसा कर लिया। यह है एक तस्वीर।

चूँकि वे मेरे परिचित थे, बीएचईएल के जी. एम. थे। अतः मैंने पूछा। उन्होंने अपने बेटे को शुरू से होस्टल में रखा। ट्वेल्थ पास करके घर आया था। जीवन में न कभी मन्दिर जाने का योग मिला, न कभी किसी मुनिराज के दर्शन का सौभाग्य मिला तो वह बेचारा क्या करेगा? क्रिश्चियन स्कूल में पढ़ा, यदा-

कदा चर्च चला जाया करता था। अतः उसे तो यह ही मालूम था कि प्रणाम करने का यही तरीका है।

यह एक उदाहरण है, कल आपके बेटे और पोतों के साथ भी यही स्थिति हो सकती है। आप कर क्या रहे हैं? उसकी तरफ ध्यान दीजिए। जो मूल तत्त्व है उसको हम भूल जाते हैं और बड़ी-बड़ी बातें कर लेते हैं। उसकी बहुत बड़ी आवश्यकता है, यह युग की पुकार है।

दोष नहीं क्या इसमें अपना ?

स्वयं संस्कारित होइये और अपने बच्चों को संस्कार दीजिए। कई-कई बार ऐसा होता है कि हम अपने बच्चों को बहुत अच्छे-अच्छे पाठ तो पढ़ाते हैं, लेकिन खुद अपना व्यवहार उल्टा रखते हैं।

यशपाल जैन ने आज की शिक्षा और घर के वातावरण पर एक बहुत अच्छा व्यंग लिखा है। बहुत अच्छे साहित्यकार हुए हैं यशपाल जैन।

एक बच्चा स्कूल गया, स्कूल में उसे पढ़ाया गया कि सदा सत्य बोलना चाहिए। वह स्कूल से घर आया। मकान मालिक ने दरवाजा खटखटाया, पूछा - पिताजी कहाँ हैं? बेटा अन्दर गया और पिताजी को कहा - मकान मालिक आया है और आपसे मिलना चाहता है। पिताजी ने उससे कहा - जाओ कह दो कि पिताजी घर पर नहीं हैं। दूसरे दिन उसे स्कूल में पाठ पढ़ाया गया - सब जीवों पर दया करो। वह घर आया, देखता है कि उसका बड़ा भाई एक अपंग भिखारी को लाठी से खदेड़ रहा है। तीसरे दिन वह स्कूल गया उसे पाठ पढ़ाया गया, सबसे प्रेम करो। घर आया। देखा उसके मम्मी-पापा किसी बात पर बड़ी बुरी तरह झगड़ रहे हैं। चौथे दिन जब उसे स्कूल जाने के लिये कहा गया तो उसने साफ-साफ कह दिया कि पापा, मैं स्कूल नहीं जाऊँगा। क्योंकि गुरु जी ठीक नहीं पढ़ाते। यह एक उदाहरण है। बहुत सारे ऐसे किस्से हैं जो अपने जीवन व्यवहार में दिखते हैं, हम यह नहीं समझते कि ऐसा करके हम अपने बच्चों के साथ कितना गड़बड़ कर देते हैं।

घर में फोन की घंटी बजी, घर में एक पाँच-सात साल के बच्चे ने बड़े उत्साह के साथ फोन उठाया। पूछा - कौन ? आपके पापा से बात करना है। तुरन्त ही उत्साहपूर्वक गया और कहा - अमुक अंकल का फोन है वे आपसे बात करना चाहते हैं। अच्छा मुझसे बात करना चाहते हैं। जाओ उनसे कह दो पापा घर पर नहीं हैं। पापा आप तो यहीं हो ! मैं कह रहा हूँ कि कह दो कि पापा घर पर नहीं हैं। बच्चा फोन पर आया और कह देता है कि - पापा कह रहे हैं कि कह दो पापा घर पर नहीं हैं। पापा ने सुन लिया। वे एकदम तमतमा गये और एक तमाचा दिया। बोले- बेटे ! तूने मुझे झूठा बना दिया। अब सच पूछो, बाप ने बेटे को झूठा बनाया कि बेटे ने बाप को झूठा बनाया ?

यह हमारा व्यवहार है, यह हमारा दुहरापन है। ऐसी स्थिति के रहते हम क्या करेंगे ? अगली बार फोन आया। अब बेटा समझ गया था, उसे अनुभव हो गया था। बेटे ने फिर से फोन उठाया। पापा ने पूछा किसका फोन है ? पापा आपको कहने की जरूरत नहीं मैं कह देता हूँ कि पापा घर पर नहीं हैं। यह हमारे द्वारा किये जाने वाले व्यवहारों का कुपरिणाम है। इस ओर भी हमें ध्यान रखना चाहिए।

पूजा होती सन्तों की

हम अपने आचरण को ठीक रखें, हम अपने जीवन व्यवहार को और अपने मूलभूत संस्कारों पर दृढ़ रहें तो हमारी संतान दृढ़ होगी। हम ढीले होंगे तो आपकी संतान भी ढीली हो जायेगी। छोटी-छोटी-सी बातें हैं, आप देखिए कि मूलभूत संस्कारों के प्रति हमारी प्रतिबद्धता कैसे कम होती जाती है। छोटा-सा बच्चा यदि नियम लेने को उत्साहित होता है तो उसकी मम्मी कहती है कि महाराज जी, इसको नियम मत दीजिए। अरे, सच्ची माँ तो वह है जो अपने बेटे से कहे कि मैं भी यह नियम पालती हूँ, साथ में तू भी पाल। विश्वास ऐसा होना चाहिए।

चरित्र का विकास ही जीवन का सच्चा विकास है। चारित्रिक क्षेत्र में यदि हम आगे बढ़ते हैं तो उसमें संकोच नहीं, गौरव का भाव होना चाहिए। ध्यान रखना, हमारी संस्कृति भोगियों की संस्कृति नहीं है, त्यागियों की संस्कृति है।

हमारी संस्कृति ने बड़े-बड़े चक्रवर्तियों, राजाओं और महाराजाओं को नहीं पूजा। हमारी संस्कृति ने टाटा, बिरला और अंबानी को नहीं पूजा। हमारी संस्कृति ने तो साधु-संतों और सूफी-फकीरों को पूजा है। उनको सम्मान दिया है, त्यागियों को सम्मान दिया है। यह हमारी मिट्टी के रग-रग में घुला है। उसकी तरफ अपना ध्यान जमाइये। स्वयं दृढ़ होइये, फिर सामने वाले को उसके साथ जोड़िये। आप सुदृढ़ होंगे तो आपको कुछ कहने की जरूरत नहीं। आपकी संतान पर आपके संस्कार पड़े बगैर नहीं रहेगे। यदि कहीं आपकी संतान आपकी उपेक्षा करती है, आपकी आज्ञा की अवज्ञा करती है तो मैं मानता हूँ कि कहीं-न-कहीं आप भी दोषी हो।

छोटी-छोटी गलतियाँ : पाताली परिणाम

कई-कई बार हम बहुत छोटी-छोटी गलतियाँ करते हैं। आजकल माँ-बाप अपने छोटे बच्चों के सामने उत्तरदायित्वहीन व्यवहार कर लेते हैं। वे सोचते हैं कि बेटा अभी भोला है, वह क्या जाने ? आपको पता नहीं, जब पेट में पलने वाला अभिमन्यु माँ-बाप की बात को सुन सकता है, समझ सकता है, तो गोद में खेलने वाला बेटा क्यों नहीं समझेगा ? विचार करो।

ऐसा कोई अनुचित व्यवहार अपने बच्चों के सामने भूलकर भी न करें, जिससे कि उसके मन पर उससे विपरीत असर पड़े। अन्यथा कालान्तर में वही पल्लवित होकर उसका व्यवहार बिगाड़ जाता है।

कई-कई बार माताएँ आती हैं और बच्चों से कहती हैं महाराज को धोक दो, नहीं तो महाराज गुस्सा हो जायेगे। आप अपने बच्चे को संस्कार दे रहे हैं ना। मन्दिर ला रहे हैं, महाराज के पास ला रहे हैं, महाराज को नमोस्तु करना सिखा रहे हैं और तरीका क्या है - धोक दो, नहीं तो महाराज गुस्सा हो जायेगे। वह बेटा सोचेगा कि महाराज भी गुस्सा होते हैं और मेरे पापा भी गुस्सा होते हैं। दोनों में कोई अन्तर है क्या ? आपने क्या संस्कार दिये ? एक गलत ईमेज साधु के प्रति उसके मन में पैदा कर दी कि साधु भी गुस्सैल होता है। और यदि होश सम्हालने के बाद संयोग से किसी ऐसे साधु के पास पहुँच जाय, जो स्वभावतः लूज टेम्पर

वाले हों तो जिंदगी भर साधु की छाया से भी दूर रहेगा। हम कर क्या रहे हैं? उस समय हमें यह बताना चाहिए कि बेटे ये महाराज हैं, ये हमारे आदर्श हैं, ये हमारे परमेष्ठी हैं, हम णमोकार मंत्र में इनको जपते हैं। ये समस्त सांसारिक विकारों से मुक्त हैं। ये किसी पर क्रोध नहीं करते। ये अपने को गाली देने वाले के प्रति भी क्षमा भाव रखते हैं। अपनी प्रशंसा करने वालों पर भी समभाव रखते हैं। ये सुपरमेन हैं। यह बात यदि आपने शुरूआत में बच्चे के दिल-दिमाग में बैठा दी, तो बड़े होने पर उसे कहने की जरूरत नहीं पड़ेगी कि तुम किसी साधु के पास जाओ। उसके मन में यह बात बैठनी चाहिए कि जैसे स्कूल जाना मेरे लिये जरूरी है, उसी प्रकार सत्संग जाना भी मेरे लिये जरूरी है। स्कूल में मेरा बाहरी कैरियर सुधरता है और यहाँ मेरा भीतर का कैरियर सम्हलता है। यह बात बच्चों के दिल-दिमाग में प्रारम्भ से बैठाइये, और अपने जीवनव्यवहार से उसे प्रकट कीजिए। सब कुछ अन्तर आ जायेगा।

हम लोग इन छोटी-छोटी बातों को छोटी बातें मानकर एक तरफ कर देते हैं तो कहाँ से संस्कार आयेगे। जब माँ कहे कि पापा को थप्पड़ मार, और पापा कहे कि मम्मी की चोटी खींचो और वे खिल-खिलाएंगे तो बच्चों का भविष्य क्या होगा? भगवान् ही जाने। हम आज मौज-शोक में, थोड़ा-थोड़ा आनन्द मानने की मस्ती में इस तरह की हरकतें कर बैठते हैं, जिसके नतीजे बहुत खराब निकलते हैं।

ऐसे पड़ते बीज गुणों के

मैं आप सबसे कह रहा था कि संस्कारों के प्रति अपनी दृढ़ता होनी चाहिए। आज भी ऐसे परिवार हैं, जो अपने बच्चों के संस्कारों के प्रति बहुत जागरूक होते हैं। इस बात के लिये सावधान होते हैं कि मेरे बेटे पर किसी भी प्रकार का कुसंस्कार न हो।

एक परिवार प्रदर्शनी देखने के लिये गया। परिवार के सदस्यों के अनुसार सबकी टिकिट ली गयी। एक छोटा बच्चा भी था। उन्होंने उसकी भी आधी टिकिट ले ली। पूछा गया कि आपने इसकी टिकिट क्यों ले ली? ये बहुत छोटा-सा

बच्चा है, दो-ढाई साल का ही होगा ना! क्या फर्क पड़ता यदि टिकिट नहीं लेते तो, किसी को कोई मालूम ही नहीं पड़ता कि इस बच्चे की टिकिट है कि नहीं। बिना टिकिट के ही काम चल जाता। उस व्यक्ति ने जो जबाव दिया वह ध्यान देने योग्य है।

उसने कहा - बिलकुल ठीक कह रहे हो, मैं अपने बच्चे की उम्र ढाई साल भी बता सकता था। और किसी को पता नहीं चलता। **पर मेरे बेटे को तो पता चल जाता। मैं दो रुपये के पीछे अपना ईमान नहीं बेचना चाहता**

आज हम देखें, दो रुपये बचाने के लिये भी हम अपना ईमान बेचने को तैयार हो रहे हैं और बात संस्कार की कर रहे हैं। कहाँ से काम चलेगा?

पहल हमें करनी होगी

मूल पर ध्यान दीजिए, संस्कारों को अच्छा बनाये रखने का प्रयत्न कीजिए। उसके लिये आवश्यकता है अपने घर के वातावरण को वैसा बनाने की। आजकल लोग कहते हैं कि महाराज, बच्चे टी० व्ही० बहुत ज्यादा देखते हैं। आप क्या कम देखते हैं?

माँ यदि चाहती है कि बच्चे टी० व्ही० देखना छोड़ें, तो माँ को पहले खुद टी० व्ही० देखना छोड़ना चाहिए। हम खुद तो सब कुछ करते हैं और सामने वाले से सारी अपेक्षाएँ रखते हैं। काम कैसे होगा, पहल हमें करनी पड़ेगी। हमें उस कहानी को याद करना होगा। जब माँ ने शिकायत गुरु से की कि यह बहुत गुड खाता है, इसका गुड छुड़वा दीजिए। गुरु ने कहा - हप्ताभर बाद आना। हप्ताभर बाद जब गुरु ने उससे कहा कि गुड खाना अच्छा नहीं। गुरु के कहते ही बेटे ने गुड छोड़ दिया। माँ को आश्चर्य हुआ। बोली - इतनी बात तो आप उस दिन भी कह सकते थे तो क्या बुराई थी। अरे, जिस दिन तूने मुझे गुड छुड़वाने की बात कही थी, उस समय तो मैं स्वयं गुड खाता था। जब मैं खुद गुड खाता था तो किसी दूसरे को गुड छुड़वाने का अधिकार मेरे पास कैसे होता? अब मैंने आठ दिनों में गुड छोड़ दिया। इसलिए अब इसका गुड छुड़वा सकता हूँ।

पश्चिम में आया बदलाव

आप सोचिए, आप कर क्या रहे हैं ! यह जीवन का बहुत महत्वपूर्ण पक्ष है। पश्चिम के लोगों में बहुत तेजी से इस तरफ झुकाव आ रहा है। वे सोच रहे हैं कि संस्कारहीनता की स्थिति में अपने जीवन का कभी भला नहीं कर सकते। वस्तुतः वह मनुष्य की सारी ऊर्जा को विपरीतपथगामिनी बना देता है। वह नकारात्मक दिशा दिला देता है, जो केवल विध्वंस का कारण बनती है। यदि एक बार व्यक्ति के अन्दर संस्कार जाग जाते हैं तो जो विध्वंस का कारण है वही निर्माण का कारण बन जाता है। आप चाहते हैं कि आपके जीवन में भी अच्छाइयाँ हों, और आने वाली पीढ़ी के जीवन में भी अच्छाइयाँ हों तो आप स्वयं संस्कारित हों और बच्चों को भी संस्कारित करें। नकारात्मकता से बचें और बचायें। सबको सकारात्मक, सृजनशील दिशा दें। हरेक के अन्दर संवेदनाएँ हो, पापभीरुता हो, एक दूसरे के अस्तित्व को समझने की भावना जगे, तभी हमारा जीवन बहुत सुखमय, शान्तिमय और मंगलमय बन सकता है। यदि ऐसा नहीं है तो अंजाम बहुत बुरा हो सकता है। मनुष्य की सोच बदलने पर बहुत कुछ निर्भर करता है।

आपने नोबल पुरस्कार सुना है। मालूम है यह नोबल पुरस्कार कब स्थापित हुआ ? इसकी बड़ी विचित्र कहानी है। रेवेलेण्ड नोबल एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक था, जिसने डायनामाइट का आविष्कार किया। एक विचित्र घटना उसके जीवन में घटी। हुआ यह कि वह रोज की तरह अखबार पढ़ रहा था, उसे समाचार मिला कि नोबल मर गया। स्वयं नोबल समाचार पढ़ रहा है कि नोबल मर गया। उसे बड़ा झटका-सा लगा। मेरे जीते-जी यह मरने का संवाद कैसे छप रहा है। लेकिन तभी उसके मन में एक नया विचार आया कि देखें, लोग मेरे प्रति क्या सोचते हैं ?

पेपर में अनेक तरह से समाचार छपे थे। किसी ने इसी समाचार को इस तरह से छापा था कि **मौत का सौदागर इस संसार से चला गया**। नोबल को घोर पश्चात्ताप हुआ। उसने सोचा - धिक्कार है मुझे। मेरे मरने के बाद दुनिया मुझे मौत के सौदागर के नाम से जानेगी। यह तो मेरे जीवन के लिये अभिशाप हो गया। यह मेरी उपलब्धि नहीं, अभिशाप है। तभी चिन्तन में नया मोड़ आया। उसने कहा - अब मैं मौत का सौदागर नहीं, शान्ति का संदेशवाहक बनूँगा।

केवल शान्ति के लिये काम करूँगा। उसने अपनी कार्यप्रणाली को बदला, सारी सम्पत्ति सरकार को सौंप दी। उसी सम्पत्ति से उसके नाम से नोबल पुरस्कार की स्थापना हुई।

बन्धुओ, यह है हमारे जीवन का पहलु। जो मौत का सौदागर होता है वही शान्ति का संदेशवाहक भी बन सकता है। यदि हमने संस्कार ठीक ढंग से डाले तो हमारी स्थिति ठीक बनेगी। यदि उल्टे संस्कार डाले तो सब कुछ उल्टपुलट हो सकता है। इसलिये आवश्यकता है घर-परिवार के वातावरण को अच्छा बनाने की। आज की पीढ़ी को यह बात अच्छी तरह से समझाने की है कि हम अपने अन्दर के भावनात्मक पक्ष का विकास करने की प्राथमिकता को भी न भूलें।

नैतिकता और प्रामाणिकता की कसौटी पर हम खरा उतरें। कोशिश करें, अपनी आध्यात्मिक उन्नति को भी कभी गौण न करें। हमारा चार दिन का जीवन है, आज है, कल रहे न रहे, कोई भरोसा नहीं। इसलिये इस तरफ ध्यान दें, सच्चे अर्थों में माँ-बाप वही है जो अपनी सन्तान को सब तरफ से मजबूत बनाती है। वह कहीं भी जाये तो उसे किसी भी तरह की उलझन न आये।

इनमें सबसे प्रमुख भूमिका माताओं की होती है, इसे आज विज्ञान भी कहता है। परिवार में माँ बच्चे की पहली शिक्षिका होती है। एक माँ बच्चे को जो संस्कार दे पाती है, उसे हजार शिक्षक मिलकर भी नहीं दे पाते। माताएँ उस दायित्व को समझें, वे केवल एक स्त्री नहीं हैं, वे माँ हैं। भावी पीढ़ी के निर्माण का गुस्तर भार उसके कंधे पर होता है। उसे इसमें खरा उतरना चाहिए। यदि माँ का व्यवहार ठीक नहीं होगा, माँ यदि अपने दायित्व से विमुख होगी तो वह रुग्ण पीढ़ी को जन्म देने की जिम्मेदार होगी। इसके साथ पुरुषों से भी अपेक्षा है कि वे अपने बच्चों को अच्छे संस्कार देवें। जो माताएँ अपने बच्चों को अच्छे संस्कार देती हैं, उनके बच्चें उनके प्रति हमेशा समर्पित रहते हैं।

इसी कलकत्ता के आशुतोष मुखर्जी का नाम आप सबने सुना होगा। बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति रहे हैं। यहाँ की यूनीवर्सिटी के वे वाइस चांसलर भी रहे हैं। जब वे यहाँ के वाइस चांसलर हुआ करते थे, तब लाट कर्जन का उनको एक आदेश आया विदेश जाने का। मिस्टर मुखर्जी विदेश जाने की इच्छा भी रखते थे। उस समय

विदेश जाना बहुत बड़ी बात मानी जाती थी। वे अपनी माँ का बहुत सम्मान करते थे। उन्होंने कुछ भी प्रतिक्रिया करने के पूर्व अपनी माँ की राय लेना जरूरी समझा। माँ से पूछा - मुझे विदेश जाने का आदेश मिला है, क्या चला जाऊँ ? उनकी माँ धार्मिक विचारों से ओतप्रोत थी, माँ ने सोचा कि मेरा बेटा कहीं विदेश जाकर भ्रष्ट न हो जाये, इसलिये माँ ने मना कर दिया।

माँ के मना करने पर मिस्टर मुखर्जी ने एक छोटा-सा भी तर्क नहीं किया। उन्होंने तो कहा - माँ तेरी जो आज्ञा है वह शिरोधार्य है। उन्होंने विदेश जाने का विचार त्याग दिया। गर्वनर जनरल को जब मालूम हुआ आशुतोष मुखर्जी विदेश जाने से मना कर रहे हैं, तो बुलाया गया और पूछा - आप विदेश क्यों नहीं जाना चाहते ? उन्होंने कहा - मेरी माँ की इच्छा नहीं।

गर्वनर जनरल ने थोड़े रूखे स्वरों में कहा - जाइये, अपनी माँ से कहिये कि भारत के गर्वनर जनरल का आदेश है कि आपको विदेश जाना होगा।

आशुतोष मुखर्जी का चेहरा मातृभक्ति और मातृगौरव से उद्दीप्त हो उठा और उन्होंने अत्यन्त दृढ़ता और विनम्रता के साथ कहा - सर, मैं अपनी माता की इच्छा के विरुद्ध स्वर्ग भी जाना पसंद नहीं करूँगा। मैं अपनी माता की आज्ञा के सामने किसी की भी आज्ञा स्वीकार नहीं कर सकता। चाहे वे भारत के गर्वनर जनरल भी क्यों न हों।

यह उदाहरण हमारी ही माटी का उदाहरण है। हम क्या कर रहे हैं, उसकी तरफ हमारी दृष्टि होनी चाहिए।

संस्कारों के लिये भी हमें कार्य करना चाहिए। आज की शिक्षा के साथ संस्कारों का समारोपण कैसे हो, इसका प्रबन्ध करें। हम खुद संस्कारित हों, बच्चों को संस्कारित करें, जैसे रविवार को आपके यहाँ पाठशालायें चल रही हैं। बहुत अच्छी बात है, इसे निरन्तर चलाते रहें। हमें धर्म का अच्छा ज्ञान हो, उसके लिये योग्य विद्वानों की व्यवस्था करके हम धर्म का पाठ पढ़ें। न केवल पाठ पढ़ें, अपितु उसका पारायण भी करें, तो हमारे जीवन का कल्याण निश्चित रूप से होगा।

सुखी जीवन की राह

(चौरंगी, कोलकाता में प्रदत्त प्रवचन-शृंखला का विशिष्ट संकलन)

प्रवचनकार : मुनिश्री १०८ प्रमाणसागर जी महाराज

प्रस्तुति : डी. राकेश जैन एवं सिंघई जयकुमार जैन

संस्करण : अक्टूबर 2012

मूल्य : रु. 30/-

प्रकाशक : निर्ग्रन्थ फाउण्डेशन, भोपाल

मोबाइल : 09425000161, 09425005624

मुद्रक : विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स

एफ-45, गोविन्दपुरा, औद्योगिक क्षेत्र, भोपाल

फोन : 0755-2601952